7191

# सोमसी

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी

tharahkardu.in

# हिमाचल अकादमी के प्रकाशन

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | विवरण | मूल्य |
|---|---|---|---|
| **हिन्दी :-** | | | |
| 1. | श्यामला | हिन्दी काव्य संकलन | 15.00 |
| 2. | तीन लोक नाटिकाएं | लोककथाओं पर आधारित लोक नाटिका-संग्रह | 5.00 |
| 3. | हिमाचल के संस्कार गीत | विभिन्न जनपदों में प्रचलित संस्कार गीत | 20.00 |
| 4. | मणिमहेश | "मणिमहेश" बंगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद | 20.00 |
| 5. | हिमाचल प्रदेश लोक-जीवन और परम्पराएं | लोक साहित्य एवं जनजातीय संस्कृति से सम्बन्धित निबन्ध | 20.00 |
| 6. | साहित्यकार-कलाकार-विवरणिका (सचित्र) | हिमाचली कलाकारों व साहित्यकारों का जीवनवृत्त व उपलब्धियां | 30.00 |
| 7. | परिवेश | हिन्दी-कहानी-संग्रह | 40.00 |
| 8. | कथा सरवरी (भाग-3) | जनजातीय लोक कथाएं | 20.00 |
| 9. | सिरमौरी लोक साहित्य | डॉ० खुशीराम गौतम | 60.00 |
| 10. | मण्डयाली लोकगीत-एक अध्ययन | डॉ० कांशीराम आत्रेय | 60.00 |
| 11. | गणेश सिंह बेदी (साहित्यिक मूल्यांकन) | डॉ० मीनाक्षी शर्मा | 60.00 |
| **संस्कृत :-** | | | |
| 1. | ऋतम्भरा | संस्कृत काव्य संग्रह | 6.00 |
| 2. | इन्दुकाव्यम् | सिरमौर और कांगड़ा की ऐतिहासिक गाथाओं पर आधारित काव्य | 15.00 |
| **उर्दू :-** | | | |
| 1. | तरतीब | हिमाचल के उर्दू शायरों | |

वर्ष 24
अंक 3
पूर्णांक 95
जुलाई, 1991

# सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति व साहित्य की
त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक
डॉ. बंशीराम शर्मा

संयुक्त सम्पादक
सरोज सांख्यायन
डॉ0 कर्म सिंह
कु0 जयवन्ती चौहान

प्रूफशोधक
निर्मल कौशल

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

**मूल्य** : 3/- रुपये एक प्रति
12/- रुपये वार्षिक

**प्रकाशक** : सचिव
**हिमाचल कला, संस्कृति एवं**
**भाषा अकादमी**
शिमला-171 001

tharahkardu.in

# विषय सूची


| क्रमांक | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | सम्पादकीय | | |
| 2. | राष्ट्र निर्माण और स्वदेशी भाषाएं | यशपाल | 1 |
| 3. | साञ्चा | शास्त्री ओमप्रकाश राही | 7 |
| 4. | महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का हिमाचल प्रदेश के इतिहासकार तथा संस्कृत को योगदान | डॉ० बंशीराम शर्मा | 11 |
| 5. | विपाशा शतद्रु और दाशराज्ञ | ठाकुर जयकिशन सिंह | 20 |
| 6. | हिमाचल का प्रसिद्ध लोक गायक काकू राम | मदन हिमाचली | 28 |
| 7. | लोकोत्सव में कठियाला की भूमिका | रामलाल पाठक | 32 |
| 8. | किल्बा का जागङ् पर्व | जसबीर सिंह | 37 |
| 9. | जागर उत्सव एक मनोविश्लेषण | डॉ० अशोक जैरथ | 40 |
| 10. | भूमि विवादों की निर्णायक मां जयईश्वरी | लायक राम शर्मा | 47 |
| 11. | सिरमौर की लोक कथा "भूरशिंग देवता" व कांगड़ा की लोकगाथा "कढ़ी" का समाज शास्त्रीय अध्ययन | धनीराम पालमपुरी | 50 |
| 12. | चूड़ेश्वर श्रीगुल | डॉ. सतीशकुमार शर्मा | 55 |
| 13. | हिमाचली हिन्दी कहानियों में नारी जीवन | डॉ. कश्मीरी लाल | 62 |
| 14. | पीरनिगाह | सतीश बस्सी | 70 |
| 15. | विवाह संस्कारों में मामा को गालियां | संजय कुमार अवस्थी | 74 |
| 16. | ब्रह्मपुरी (गादी) सन्दर्भ सूची | डॉ. श्याम लाल डोगरा | 77 |

# सम्पादकीय

सोमसी पत्रिका के प्रस्तुत अंकों में अपेक्षाकृत छोटे आकार के लेखों में मूल्यवान सामग्री उपलब्ध की जा रही है। स्व० यशपाल हिमाचल प्रदेश के स्वनामधन्य साहित्यकार हैं। उन्होंने पचास से भी अधिक पुस्तकें लिखीं परन्तु उनके निधन से पूर्व उन द्वारा लिखित पर्याप्त सामग्री पाठकों तक नहीं पहुंच पाई। यशपाल साहित्य परिषद् नादौन यशपाल साहित्य को प्रकाश में लाने के लिए प्रयत्नशील है। डॉ. ब्रह्मदत्त शर्मा ने प्रस्तुत अंक के लिए यशपाल जी का अप्रकाशित लेख 'राष्ट्र निर्माण और स्वदेशी भाषाएं' उपलब्ध करवाया है। वे इस महान् लेखक की अद्यतन अप्रकाशित सामग्री को प्राप्त करके पाठकों तक पहुंचाने का यत्न कर रहे हैं, यह सामयिक तथा प्रशंसनीय कार्य है। प्रदेश के सपूत साहित्यकार को यह सच्ची श्रद्धांजली होगी। ब्राह्मी लिपि के विकास के परिणामस्वरूप कालान्तर में अनेक स्थानीय लिपियां पनपीं। इनमें शारदा, टांकरी तथा गुरमुखी आदि का विकास क्षेत्र उत्तरी भारत रहा। इनके अतिरिक्त शिमला, सिरमौर तथा उत्तर प्रदेश के जौनसार बावर क्षेत्रों में एक अन्य लिपि भी विकसित हुई जिसे भटाक्षरी तथा पाबुची के नामों से जाना जाता है। ये लिपियां तन्त्रग्रन्थों के प्रणयन के लिए इन क्षेत्रों में अब भी प्रचलित हैं और इनमें लिखित हज़ारों पाण्डुलिपियां स्थानीय लोगों के पास उपलब्ध हैं। अकादमी द्वारा भटाक्षरी सिखाने के लिए यत्न किए जा रहे हैं और 'सांचा' नाम से ख्यातिप्राप्त पाण्डुलिपियों को प्रकाश में लाने के लिए तथा इन लिपियों पर शोध के लिए एक योजना पर कार्य किया जा रहा है। इसी सन्दर्भ में श्री ओम प्रकाश राही का एक परिचयात्मक लेख इस अंक में सम्मिलित है।

दाशराज्ञ युद्ध पर एक परिचयात्मक लेख, प्रसिद्ध गायक काकू राम पर परिचय सामग्री, कठियाला, जागङ् तथा जागर

सम्बन्धी सांस्कृतिक परिवेश पर परिचयात्मक रचनाएं, मां जयईश्वरी, देवता भूरशिंग तथा कांगड़ा की एक लोक कथा का तुलनात्मक परिचय, भरमौरी (गादी) सन्दर्भ सूची, चूड़ेश्वर तथा पीर निगाह के सम्बन्ध में परिचयात्मक विवरण और मामा को गालियों के अतिरिक्त महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, जिनकी जन्म शताब्दी सन् 1993 ई० में आ रही है पर कुछ सामग्री यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। प्रदेश की साहित्यिक सांस्कृतिक तथा कला सम्बन्धी धरोहर अवगाहन एक बारगी सम्भव नहीं है परन्तु वर्ष 1975 में आरम्भ की गई सोमसो पत्रिका के माध्यम से अब तक प्रायः सभी सम्बद्ध विषयों पर सामग्री संकलित तथा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

आशा है प्रस्तुत सामग्री विद्वानों तथा अनुसन्धित्सुओं को पसन्द आएगी।

**बंशीराम शर्मा**

●

# राष्ट्र निर्माण और स्वदेशी भाषाएं

यशपाल

(यशपाल हिन्दी के मर्मज्ञ साहित्यकार प्रख्यात कथा-शिल्पी, मार्क्सवादी विचारधारा के विराट चेता और सामाजिक चेतना के अग्रणी कृतिकार थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा और मेधा से हिन्दी साहित्य को अनेक अनमोल रचनाओं से समृद्ध किया। लगभग चालीस वर्षों तक साहित्य सृजन किया। वे हिन्दी कथा-साहित्य के मील के पत्थर हैं।

उन्होंने भाषा के प्रश्न पर उभरने वाले तनाव के किसी प्रयास की चाहे वे जिस खेमे से हों, उनकी कटु आलोचना की है। उन का यह दृढ़ मत था कि जब तक जनमानस को संघटित करने वाली भाषाएं पूर्ण स्वाधीन न होंगी तब तक न तो जनमानस की मुक्ति की कल्पना की जा सकती है और न वास्तविक इच्छाशक्ति की प्रक्रिया आरम्भ हो सकती है। यह तभी सम्भव हो सकेगा जब अंग्रेजी के स्थान पर हमारी अपनी भाषाएं हमारे जन-जीवन के सभी व्यवहारिक क्षेत्रों में प्रतिष्ठित हो जाएं। भाषा को उन्होंने देश, समाज के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग स्वीकार किया है। यशपाल की यह अवधारणा थी कि अपनी भाषा के बिना कोई भी समाज या राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। वे सभी प्रादेशिक भाषाओं के समुचित विकास और उन्नति के प्रबल समर्थक, पोषक और पक्षधर थे। इसके साथ ही वे ऐसी भाषा के प्रचलन के पक्ष में थे जो समग्र राष्ट्र को एक सूत्र में बांध सके। यह काम उनके दृष्टिकोण में हिन्दी ही कर सकती है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से यह काम नहीं हो सकता। जनता की वाणी का मुक्त होना प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का मौलिक आधार है। जहां तक

उनकी दृष्टि में अंग्रेजी के महत्त्व का सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में उनका स्पष्ट मत है—"अंग्रेजी भाषा से अब तक हमने बहुत कुछ ग्रहण किया है और आगे भी यह हमारे लिए इस दिशा में बहुत सहायक सिद्ध हो सकेगी परन्तु इस दिशा में हमारा मत उतना ही निश्चित है कि अंग्रेजी को अन्य भाषाओं की तरह हम विशिष्ट उपयोग और प्रयोजन के स्तर पर ही स्वीकार करते हैं।"

यशपाल का प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण पूर्व अप्रकाशित लेख डॉ० ब्रह्म-दत्त शर्मा के सौजन्य से यहां अविकल रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।)

— सम्पादक

भारतीय नव-जागरण के प्रारम्भिक उन्मेष के समय देश के चिंतकों, विचारकों, सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं तथा साहित्यकारों का यह निश्चित मत था कि अपनी भाषा के बिना कोई भी समाज या राष्ट्र अपने सम्पूर्ण संभाव्य विकास तथा अभ्युदय से अनिवार्यतः वंचित रह जाता है। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख उन्नायकों तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के उद्घोषकों ने निरंतर इस बात पर बल दिया था कि हम अपनी स्वाधीनता और अपनी प्रतिष्ठा को अपनी भाषा के माध्यम से ही पूरी तरह प्राप्त कर सकते हैं। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद हम इस सम्बन्ध में कोई निश्चित कदम उठा सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास था परन्तु देश की राजनीति ने तभी से कुछ ऐसा रूख पकड़ा कि भाषा-नीति-विषयक हमारा दृष्टि-पथ अनेक भ्रांतियों के कुहासे में डूबता गया, अस्पष्ट और दुष्प्राप्य होता गया। आज भाषा जैसे सुस्पष्ट और स्वयं-सिद्ध प्रश्न ने कुछ ऐसा जटिल रूप धारण कर लिया है कि इस सम्बन्ध से विचार करने अथवा मत प्रकट करने में ही हमें अनेक शंकाएं होने लगती हैं। राष्ट्रीय जीवन के इतने मार्मिक और व्यापक प्रश्न को इस सीमा तक उलझा दिया गया है कि आज सारे देश में भाषा के विषय में भारी विभ्रम है।

ऐसी स्थिति में हम लेखकों का यह कर्त्तव्य है कि हम अपने विचारों और मंतव्यों से इस सम्बन्ध में फैली हुई भ्रांतियों का निराकरण करके दिशा निर्देशन करने में अपना योगदान दें, दलों, पक्षों, मतवादों, निहित-स्वार्थों से अलग रहकर अपनी जनता

की व्यापक भावनाओं और आकांक्षाओं के साक्षी और प्रतिनिधि रूप में इस विषय में अपना सुचिंतित और निभ्रान्ति मत प्रकट करना हम लेखकों का इस क्षण महान् दायित्व है।

हम लेखक गत वर्षों से अधिकाधिक अनुभव करते आ रहे हैं कि इस देश की वास्तविक स्वाधीनता का अर्थ लोक-मानस की स्वाधीनता है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद इस देश ने बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाई हैं और अनेक क्षेत्रों में मौलिक, तात्विक परिवर्तन करने का संकल्प किया है पर हमारे सामने प्रश्न यह है कि जनता देश की इन योजनाओं, घोषणाओं तथा कार्यों से यथेष्ट प्रेरणा क्यों नहीं ग्रहण करती। इनके प्रति आकर्षित क्यों नहीं होती। इनके कारण अपने भविष्य के विषय में अधिक आश्वस्त क्यों नहीं होती। इनसे लगाव का अनुभव क्यों नहीं करती। हम कारण जानना चाहते हैं। किसी भी देश के लिए स्वाधीनता प्राप्त करना साधारण घटना नहीं है फिर हमारी स्वाधीनता प्रजातांत्रिक है और अगणित नवीन संभावनाओं से समृद्ध भविष्य की पूर्णपीठिका बन कर आई है। इतना बड़ा देश, उस की इतनी जन-शक्ति और उसका नया तथा भव्य भविष्य उद्घाटित हो परन्तु जनता के जीवन में अपेक्षित आवेश न हो, उत्तेजना न हो यह गम्भीर चिन्ता का विषय है।

क्या हम स्पष्ट नहीं देख रहे हैं कि वास्तव में हमारी स्वाधीनता अधूरी है, हमारा जन-मानस अभी मुक्त नहीं हुआ है। सत्य तो यह है कि जब तक जन-मानस को संघटित करने वाली भाषाएं पूर्ण स्वाधीन न होंगी, न तो जन-मानस की मुक्ति की कल्पना की जा सकती है और न वास्तविक इच्छा-शक्ति की प्रक्रिया आरंभ हो सकती है। यह तभी सम्भव हो सकेगा जब अंग्रेजी के स्थान पर हमारी अपनी भाषाएं हमारे जन-जीवन के सभी व्यवहारिक क्षेत्रों में प्रतिष्ठित हो जायें।

हम लेखकों का विश्वास है कि स्वाधीनता का वास्तविक अनुभव जन-मानस के स्तर पर अपनी भाषाओं के माध्यम से ही सम्भव है। इस अनुभव के अभाव में स्वाधीनता की उप-

लब्धियों की आशा करना भी बहुत कुछ व्यर्थ ही है। हम भाषा को देश, समाज और राष्ट्र के व्यक्तित्व का अंग मानते हैं। वह हमारे लिए बाह्य उपकरण न होकर आंतरिक प्रक्रिया है पर लगता कुछ ऐसा है कि हम यह जानते ही नहीं कि देश की जागृति अपने आप में न गत्यात्मक है और न सर्जनात्मक। गति और सर्जन के लिए जन-मानस में उस विवेक की आवश्यकता होती है जो परिवेश और परिस्थिति से तादात्म्य स्थापित कर सके, नव-निर्माण की दिशाओं और विधाओं के लिए उनसे प्रेरणा के साथ-साथ अपेक्षित निर्देश भी प्राप्त कर सके। भविष्य की आशा और महत्वाकांक्षाओं का ठीक अनुमान लगाए बिना किसी राष्ट्र या व्यक्ति की गत्यात्मक सर्जन-शक्ति संचालित नहीं हो सकती। हमारा विश्वास है कि जब तक हमारी भाषाएं जनता के मानस को इस प्रकार गतिशील और सर्जनशील नहीं बनातीं, वह नवीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक तथा वैज्ञानिक प्रगति के किसी पक्ष को ग्रहण करने और आशापूर्ण भविष्य की कल्पना से स्फुरित होने में असमर्थ रहेगा।

हम लेखक यह स्मरण दिलाना चाहते हैं कि हमारे देश की स्वतन्त्रता प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर प्रतिष्ठित है, जिसका आधार समाजवादी भी घोषित किया जाता हैं। स्वतन्त्रता, विकास, प्रगति अथवा जीवन के स्तर की कोई भी कल्पना इस देश में तब तक सार्थक नहीं मानी जा सकती, जब तक उसमें हमारी साधारण जनता चेतना, भावना और व्यवहार के स्तर पर सहयोगी और सहभोगी न हो। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से यह कभी संभव नहीं हो सकता। जनता की वाणी का मुक्त होना प्रजातांत्रिक व्यवस्था का मौलिक आधार है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से प्राप्त जिस क्षमता, योग्यता और दक्षता की प्रायः चर्चा की जाती है, वह उस उपलब्धि की तुलना में नगण्य है, जिसकी अनिवार्य शर्त है जन-मानस की मुक्ति। देश में वास्तविक और मौलिक क्षमता, योग्यता और दक्षता इसी आधार पर विकसित होगी। हमारे प्रजातांत्रिक आदर्शों की पूर्ति अपनी भाषाओं की प्रतिष्ठा के बिना सम्भव नही है।

हम लेखक यह अनुभव करते हैं कि स्थिति का समाधान अंग्रेजी भाषा को पूर्ववत् पदासीन रखते हुए अपनी भाषाओं को उन्नत करने की चेष्टा में नहीं है। वर्तमान स्थिति में हमारी भाषाएं सारे प्रोत्साहन के बावजूद दयनीय बनी हुई हैं।

यह कहने की तो वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि हम लेखकों की दृष्टि में किसी विदेशी भाषा से विरोध का प्रश्न नहीं उठता। विज्ञान, चिंतन, मनन के संसार-व्यापी आन्दोलन से परिचित होने के लिए और सम्पर्क बनाए रखने के लिए हमें जिस भी विदेशी भाषा का सहयोग मिलेगा, हम उसे सादर और साभार ग्रहण करेंगे। अंग्रेजी भाषा से अब तक हमने बहुत कुछ ग्रहण किया है और आगे भी यह हमारे लिए इस दिशा में बहुत सहायक सिद्ध हो सकेगी परन्तु इस दिशा में भी हमारा मत उतना ही निश्चित है कि अंग्रेजी को अन्य विदेशी भाषाओं की तरह हम विशिष्ट उपयोग और प्रयोजन के स्तर पर ही स्वीकार कर सकते हैं। (वास्तव में अंग्रेजी के साथ हमारे सम्बन्धों का इतिहास और अद्यतन जगत में उसका उत्कर्ष हमारी दृष्टि में अन्य विदेशी भाषाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्व और निकटता प्रदान करते ही हैं।) हमारा उद्देश्य सारे ज्ञान-विज्ञान को अपनी भाषाओं में लाना है। इस दृष्टि से विदेशी भाषाएं और विशेषतः अंग्रेजी हमारे लिए आवश्यक हो सकती है। अतः उसके अध्ययन का समुचित और व्यवस्थित प्रबन्ध होना अपेक्षित है पर सामान्य व्यवहारिक स्तर पर देश के जीवन में उसका अनिवार्य होना हमारी दृष्टि में अनुचित और असंगत है। ज्ञान-विज्ञान, चिंतन-मनन की हमारी मौलिक प्रक्रिया हमारी अपनी भाषा में ही सम्भव हो सकती है।

हमारे सामने देश की जो कल्पना है, हम जिन आदर्शों पर अपने देश को संघटित करना चाहते हैं, हम जिन सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था में विश्वास करते हैं, उसमें भारतीय भाषाओं में किसी एक का दूसरे पर आरोपित होने का प्रश्न नहीं उठता। इस प्रकार की शंका के मूल में जो भी है वह मात्र भ्रम ही है। इस प्रकार का भ्रम प्रायः सरकारी नौकरियों आदि के

प्रश्न को लेकर उठाया जाता है, जिसका समाधान न तो बहुत कठिन है और न देश के व्यापक जीवन के सम्मुख बहुत महत्त्वपूर्ण ही। हमारे प्रदेशों की भाषाएं जन-जीवन को भावी युग के नवीन मूल्यों के प्रति नई योजनाओं की ओर प्रेरित तथा आंदोलित करेंगी, यह उनका सहज और पवित्र कर्त्तव्य है। ये भाषाएं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र का इस प्रकार संतुलन रखेंगी जिससे उन प्रदेशों में कोई वर्ग, कोई दल, कोई उप क्षेत्र कोई व्यक्ति अन्य किसी को आक्रान्त करने की स्थिति में ही नहीं, मनःस्थिति में भी न होगा फिर अन्तर-प्रादेशिक स्तर पर एक भाषा को स्वीकार करना सहज सम्भव हो सकता है और उस भाषा का यह एक अतिरिक्त दायित्व मात्र होगा कि वह सारे देश और राष्ट्र को उन्हीं मूल्यों के स्तर पर एक सूत्र में बांध सके ... और यह सूत्र किसी के लिए बन्धन सिद्ध न हो।

●

श्री भीमसेन जी, भीम दत्त काले जयन्ती के अवसर पर सितार वादन करते हुए

ज्योतिष और तन्त्र विद्या का अनुपम ग्रन्थ

# साञ्चा

शास्त्री ओमप्रकाश राही

'साञ्चा' ज्योतिष एवं तन्त्र विद्या का अनुपम ग्रन्थ है। हिमाचल प्रदेश के जिला सिरमौर तथा जुब्बल क्षेत्र (शिमला) के पण्डित ज्योतिष एवं तन्त्र सम्बन्धी कार्यों के लिए आजकल भी इस ग्रन्थ का उपयोग करते हैं। यह ग्रन्थ मुख्यतः 'पाबुची' एवं 'भटाक्षरी' लिपि में पाया जाता है। अनूदित होकर अब यह ग्रन्थ हिन्दी में भी पाया जाने लगा है किन्तु इसका मूल 'पाबुची' ही है जिसके विद्वान पण्डित जुब्बल क्षेत्र के 'चांदन' में विद्यमान हैं।

'साञ्चा' ग्रन्थ की विषय-वस्तु अति विस्तृत है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के संस्कारों के अवलोकनार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। रोग निवारण जादू-टोना, भूत-प्रेत बाधा से मुक्ति, सम्मोहन, सम्मूर्छन, मारण आदि तक के तन्त्र मन्त्रों का वर्णन इसमें मिलता है। यह प्रयोक्ता के विवेक पर निर्भर करता है कि वह कैसे कार्यों के लिए इसका प्रयोग करता है।

विशेषज्ञों के अनुसार यह प्रयोग किया गया तथ्य है कि यदि प्रसूति काल में किसी महिला को कष्ट हो रहा हो तो उसे इस ग्रन्थ में विद्यमान तन्त्र का पान कराकर सरलता से प्रसव कराया जा सकता है। प्रसव के पश्चात् बच्चे का भविष्य जानने बारे विशेषतः 'डांडा', 'छतरी', 'रेख' आदि जानने के लिए इस ग्रन्थ का फलादेश देखा जाता है। तिथि, लग्न, पहर आदि का फलादेश भी इस ग्रन्थ में विद्यमान है। विवाह,

गृह-स्थापना आदि के लिए शुभ बेला तथा प्रश्न फलादेश का विचार भी इस ग्रन्थ के माध्यम से किया जाता है। मानव की अन्तिम-यात्रा के उचित समय बारे भी 'साञ्चा' ग्रन्थ विधान बताता है।

**पाशा :-** 'साञ्चा' ग्रन्थ का उपयोग विशेषत: प्रश्न फलादेश तथा किसी रुग्ण के आधिदैविक कष्ट निवारण हेतु किया जाता है। इसके लिए 'पाशा' का होना नितान्त अनिवार्य है। 'पाशा' जुए के पासे से मिलता है किन्तु इसे तैयार करना इतना सरल नहीं। पाशे पर चार तक ग्रंक = बिन्दु 0, 00, 000, 0000 ग्रंकित होते हैं जिन्हें 1, 2, 3, 4 के विचार से क्रमश: दा, दुआ त्रीक, चोक पढ़ा जाता है, क्योंकि यह विद्या शकुन विचार पर आधारित होती है। अत: शकुन विचारक पशु-पक्षिओं के अवयवों से निर्मित्त 'पाशा' ही श्रेष्ठ माना जाता है।

उदाहरणार्थ इसे कक्कड़ के सींग अथवा काक व सियार ग्रादि की हड्डी से बनाया जाता है। अब इस पाशे पर ग्रंक लेखनार्थ भी विशेष मुहूर्त एवं शकुन की आवश्यकता होती है। 'पाबुची' पण्डित श्री शिवानन्द के शब्दों में—"इस प्रकार के मुहूर्त को पकड़ने में दिन महीनों तो क्या, वर्षों भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस विधि से तैयार पाशा ही फलादेश देने में सक्षम होता है अन्यथा साधारण रीति से विधिहीन कार्य करने पर ठीक फलादेश न निकलने पर ही लोग इस के बारे में अन्धविश्वास जैसे शब्द का प्रयोग करने लगे हैं"।

**फलादेश :-** उपर्युक्त विधि से बनाये गए पाशे को किसी व्यक्ति के प्रश्न आदि करने पर पण्डित बन्द सांचे पर फैंकते हैं ग्रौर इस तरह तीन बार डालने के पश्चात् उसका फलादेश पढ़ते हैं। उदाहरणार्थ पाशा डालने पर त्रीक, दा, दुआ अर्थात् 3, 1, 2 आया तो ग्रन्थ खोलने पर इन ग्रंकों के ग्रागे लिखे फलादेश को पण्डित पढ़ देते हैं। सूक्ष्मता से फल जानने के लिए ग्रनेक बार पाशा डाला जाता है और तब जमा, घटाव, गुणा, भाग का प्रयोग करके काफी परिश्रम के पश्चात् निष्कर्ष

निकाला जाता है। किसी पीड़ित अथवा रोगी के रोग के विचारार्थ भी इसी प्रकार 'साञ्चा' 'पाशा' का प्रयोग किया जाता है। इसे 'गणना' कहते हैं। गणना के पश्चात् पण्डित पीड़ित व्यक्ति को 'बन्धा' देते हैं और लाभ होने के पश्चात् ही उसका पूर्ण उपचार करते हैं। रोग शमनार्थ इस ग्रन्थ में विविध तन्त्र-मन्त्रों का प्रयोग लिखा होता है जिसके प्रयोग का अलग-अलग विधान है। यह दोष होने पर सात अनाजों के सम्मिश्रण को जिसे 'सतनाजा' कहते हैं, अभिमन्त्रित करके घर के चारों ओर डाला जाता है तथा कागज पर जन्त्र बनाकर उसमें भी सतनाजा डालकर गोबर की सहायता से गृह-द्वार अथवा भित्ति पर लगाया जाता है। ऐसा करने पर गृहदोष दूर हो जाता है।

व्यक्ति विशेष की पीड़ा दूर करने हेतु 'साञ्चा' ग्रन्थ में उल्लिखित जन्त्र को पूर्ण विधि से तैयार करके पीड़ित व्यक्ति के गले अथवा बाजू में बांधा जाता है। कभी-कभी स्थिति विशेष को देखते हुए इन जन्त्रों को कागज पर लिखकर तब पानी से धोकर पीड़ित व्यक्ति को पिलाया भी जाता है। किसी व्यक्ति को धीमा विष दिये जाने पर 'साञ्चा' ग्रन्थ के पन्नों का प्रयोग करते हुए जन्त्रयुक्त धागा बनाकर रोगी के गले में पहनाकर उसे लाभ होते देखा गया है। विष उपचारार्थ तहसील रेणुका के ग्राम भाटण निवासी स्व० पं० जातीराम जी अपने 'भटाक्षरी' लिपि में लिखित 'साञ्चा' के माध्यम से विशेष ख्याति अर्जित किये हुए थे। जिनके वंशज आज भी इस का प्रयोग करते हैं और विष उपचारार्थ आज भी लोग दूर-दूर से उनके पास आते हैं। किसी छोटे बच्चे के लगातार रोने पर जिसे 'रुणी लगाना' कहा जाता है, उसके सिर पर 'साञ्चा' फेरने मात्र से बच्चे को चुप होते देखा एवं सुना गया है। 'साञ्चा' ग्रन्थ इसके अतिरिक्त भी अनेकों चमत्कारिक तन्त्र विद्या से परिपूर्ण है, आवश्यकता है तो केवल ज्ञान एवं विधान की।

**अनिवार्य विधान :-** कोई भी विद्या स्वयं में अपूर्ण एवं असत्य नहीं होती। उसका फल प्रयोक्ता के ज्ञान एवं विधान पर निर्भर करता है। इसी प्रकार 'साञ्चा' ग्रन्थ में प्रतिपादित

तन्त्र एवं गणित विद्या स्वयं में पूर्ण है। इसका समग्र फल प्रयोक्ता को तभी मिल सकेगा, यदि वह इसका पूर्ण ज्ञान एवं बिधान रखता हो। इस निमित्त 'पाबुची' विशेषज्ञ 'पाबुच' अभी भी प्रसिद्ध हैं। अपने सात्विक आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान की पवित्रता के कारण वे आज भी प्रसिद्ध हैं। उनकी इसी पवित्रता के कारण 'पाबुच' शब्द 'पवित्रता' के अर्थ में रुढ़ हो गया है क्योंकि यदि कोई साधारण व्यक्ति व्यवहार में कहीं पवित्रता की बात करेगा तो उसे कहा जाता है—'बड़ा आया तू पाबुच कहीं से'। वस्तुतः मूलभूत 'पाबुच' आज किसी के घर जाने पर चूल्हा-चौका करने के पश्चात् अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। पराई स्त्री को वे केवल बहन अथवा भानजी की दृष्टि से देखते हैं। यही कारण है कि वे आज भी इस विधा के पारङ्गत माने जाते हैं और उन द्वारा निर्दिष्ट फलादेश मिथ्या नहीं होता।

वस्तुतः 'साञ्चा' गणित एवं तन्त्र विद्या का आदि ग्रन्थ है। इसकी प्राचीनता, लिपि, भाषा आदि के बारे में विशेष अनुसन्धान की महत्ती आवश्यकता है।

लामाओं द्वारा गोम्पा में पूजा अर्चना

# महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का हिमाचल प्रदेश के इतिहास तथा संस्कृति को योगदान

डॉ० बंशीराम शर्मा

युगपण्डित राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व महामानव का था। उनके पास विचारों की ऐसी विपुल राशि थी जो केवल दिव्य ज्ञान सम्पन्न लोगों के पास ही होती है। मनीषी राहुल का भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार था। वे ऐसे कलाकार थे जो कला को संस्कृति से, संस्कृति को समाज से, समाज को राजनीति से, राजनीति को अर्थशास्त्र से, अर्थशास्त्र को मार्क्सवादी विचारधारा से, मार्क्सवादी विचारधारा को अध्यात्म से तथा अध्यात्म को व्यवहारिक प्रयोगवाद से जोड़ सकते थे। वे हिन्दी के मौलिक साहित्यकार, बौद्धधर्म के प्रकाण्ड विद्वान, बौद्ध दार्शनिक, इतिहासकार, पुरातत्ववेत्ता, घुमक्कड़ यायावर, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, साम्यवादी विचारक, संस्कृति-विज्ञ पुरातत्ववेत्ता, विराट, अन्तरचेता, राजनीतिविद् तथा कायिक, वाचिक और लेखनी की मनस्विता के बीहड़ पथ के महायात्री थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रावृत्त, निबन्ध, नाटक साहित्य का इतिहास, दर्शन, समाज शास्त्र, धर्म, संस्कृति, विज्ञान और राजनीति आदि विषयों पर हिन्दी भाषा में लिख कर उसे ज्ञानराशि से सन्तुलित, धनी तथा गौरवशाली बनाया। उनकी लगभग 150 पुस्तकें हैं और उनके छिटपुट निबन्धों की संख्या असीम है। उनका व्यक्तित्व पूरी संस्था का व्यक्तित्व था और हिन्दी साहित्य को उनका योगदान अविस्मरणीय है।

महापण्डित राहुल का जन्म आजमगढ़ जिला के पन्दहा गांव में 9 अप्रैल, 1893 ई० को हुआ। उनके पिता का नाम

गोवर्धन पाण्डेय तथा माता का नाम श्रीमती कुलवन्ती था। राहुल का बचपन का नाम केदारनाथ पाण्डेय था। उनका बचपन अपने नाना रामशरण पाठक के यहां कनैला गांव में बीता। नाना के व्यक्तित्व का बालक केदारनाथ के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने ही उन्हें स्वतन्त्र चिन्तन तथा घुमक्कड़पन की आदत डाली। उनकी शिक्षा दीक्षा घर पर ही हुई। वे 36 भाषाओं के जानकार थे और कुछ भाषाएं प्रयोग में न आने के कारण भूलती चली गईं परन्तु उनकी पत्नी डॉ० कमला सांकृत्यायन के अनुसार--"अन्त तक वे 16 भाषाओं में धाराप्रवाह रूप से बोल व लिख सकते थे"। उन्होंने बाबा हरिकरण दास से वेदान्त की शिक्षा प्राप्त की। स्वामी पूर्णानन्द से मन्त्र साधना का अभ्यास किया और परसामठ के महन्त लछमणदास से दीक्षा लेकर वे सन् 1912 ई० में रामउदार दास साधु बन गए। आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा से आर्यसमाज की शिक्षा लेकर वे आर्यसमाज के प्रचारक बने और इस धर्म को सार्वभौम धर्म मनाने लगे परन्तु भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति उनके मन में असीम श्रद्धा जगी और वे बौद्धधर्म की ओर आकृष्ट हुए। सन् 1926 ई० में वे श्रीलंका गए और "त्रिपिटक" का अध्ययन करके "त्रिपिटकाचार्य" बने। बौद्धधर्म के प्रचारक के रूप में उन्होंने यूरोप तथा तिब्बत की अनेक यात्राएं कीं। सम्मेलन पत्रिका (भाग 58 पृ० 31) में पण्डित राम गोविन्द त्रिवेदी ने उनके सम्बन्ध में लिखा कि "राहुल जी बौद्धों के शून्यवाद, क्षणिकवाद और विज्ञानवाद का इतना सरल निर्वचन करते थे कि साधारण जन की बुद्धि में भी निर्वचन का कुछ अंश समा जाता था। बौद्धों के पांच स्कन्धों का विश्लेषण सुन कर लोगों का हृदय उल्लास से भर जाता था"।

सन् 1939 में राहुल कम्युनिस्ट दल के सदस्य बने और पूर्णतय: नास्तिक हो गए। वे बाद में मार्क्सवादी भौतिकवाद के अनुयायी बने। उन्हें द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन भाया और वे उसमें प्रामाणिकता की पुष्टि के प्रति आश्वस्त हुऐ। राहुल ने किसी भी तर्क को तर्क के लिए तथा मत को मत के लिए स्वीकार

नहीं किया। वे आजीवन घुमक्कड़ रहे और अपने ज्ञान को नया रूप देने में समर्थ तथा प्रयत्नशील रहे। उनका नारा ही "जयतु-जयतु घुमक्कड़ पन्था' था। घुमक्कड़ शास्त्र पुस्तक में (पृ०1) उन्होंने अपनी मान्यता इस सम्बन्ध में इस प्रकार व्यक्त की है—"मेरी समझ में दुनियां की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ी से बढ़ कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता।" शंकराचार्य के "निस्त्रैगुण्ये पथि विचरत:" को विधि निषेध:' सिद्धान्त को उन्होंने जीवन का सार माना। उन्होंने नेपाल, लंका, यूरोप, सोवियत रूस, तिब्बत, लद्दाख, जापान, कोरिया, मंचूरिया, ईरान तथा चीन आदि देशों की यात्राएं कीं। तिब्बत में वे चार बार गए और वहां से दुर्लभ कलाकृतियों व पाण्डुलिपियों की अमर पूंजी इस देश के लिए लाए।

रामउदार साधु राहुल असहयोग आन्दोलन में कांग्रेस के कार्यकर्ता रहे। परसा तथा एकमा स्थानों पर उन्होंने "चर्खा खद्दर प्रचार" तथा "मादक द्रव्य निषेध" आन्दोलनों में भाग लिया। उन्होंने छपर के बाढ़ पीड़ितों की सहायता की और आन्दोलन के सम्बन्ध में छः मास तक बक्सर जेल में रहे। उन्हें सन् 1823 ई० में बिहार कांग्रेस की एक जनसभा में भाषण देने तथा चौरा-चौरी काण्ड के शहीदों को श्रद्धांजलि भेंट करने के कारण दो वर्ष का कारावास दिया गया। वे दो वर्ष तक हज़ारीबाग जेल में रहे।

सन् 1930 के बाद वे कांग्रेस की नीतियों से असन्तुष्ट रहने लगे और दो वर्ष बाद "बिहार सोशलिस्ट पार्टी" के मंत्री बने। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सन् 1939 ई० में वे साम्यवादी हो गए। अपनी पुस्तक "मेरी जीवन यात्रा (भाग 2)" में पृष्ठ 537 पर उन्होंने इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—"मुझे व्यक्ति के अलग-अलग जीवन की अपेक्षा समष्टि का सामूहिक जीवन सदा ही अधिक पसन्द रहा। राजनीतिक कार्यों में पड़ने के बाद तो मुझे और पता लगने लगा कि एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। क्रान्ति के संचालन के लिए जबरदस्त सुसंगठित सेना होनी चाहिए। मैंने कम्युनिस्ट पार्टी को इसी रूप में पाया"। वे एक सुलझे हुए क्रान्तिकारी थे, उन्होंने भोजपुरी में भी दो

पुस्तकें लिखीं हैं जिनसे उसका स्थानीय भाषाओं में प्रेम स्पष्ट होता है। बाईसवीं सदी उपन्यास में उन्होंने भविष्य दर्शन की चेष्टा की है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में "सिंह सेनापति" जय यौधेय, मधुर स्वप्न दिवोदास आदि प्रसिद्ध हैं। उनके कहानी संग्रह "वोल्गा से गंगा" बहुरंगी मधुपुरी, कनैला की कथा तथा "मेरी जीवन यात्रा" के पांच भाग आत्म-कथा साहित्य की धरोहर हैं। घुमक्कड़ स्वामी, सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन, घुमक्कड़ शास्त्री, मेरी लद्दाख यात्रा, तिब्बत में सवा वर्ष, एशिया के दुर्गम भूखण्डों में, पुरातत्व निबन्धावली, राहुल निबन्धावली ऋग्वैदिक आर्य, किन्नर देश, हिमालय दर्शन आदि रचनाएं उनके साहित्य के विविध सोपानों को उजागर करने वाली पुस्तकें हैं। "जय यौधेय" की गणना हिन्दी के दस श्रेष्ठ उपन्यासों में की जाती है।

वे समय के साथ चलने के लिए सतत् क्रियाशील रहे। देश की स्वतन्त्रता उन्हें अत्यन्त प्रिय थी। उन्होंने इस सम्बन्ध में तुलसी माला फेंक कर अब इन हाथों में "मैं लगवाऊंगा हथकड़ियां और गले में रूद्राक्ष की माला के बदले अगर मर सकूं फांसी का फंदा लगवा कर तो समझूंगा कि अपना जीवन धन्य हुआ। अब तक साधु बन कर मांगता फिरता था—अपने लिए भीख, और अब लड़ाकू बनकर अपने देश की आज़ादी वसूल करने के लिए लड़ूंगा। लाखों-करोड़ों भूखों के मुंह में रोटी डालने का संकल्प लेकर चल पड़ूंगा एक तूफान बन कर।" उन्होंने भगवान बुद्ध के इस वाक्य को अपना मार्गदर्शक समझा। इस में कहा गया है कि, "मैंने तुम्हें नदी पार करने के लिए नाव दी थी। पार हो जाने पर उसे सर पर उठा कर ढोने के लिए नहीं।" यही कारण है कि वे अपनी जीवन डगर पर अकेले चलने से भी घबराते नहीं थे।

हिमाचल प्रदेश में उनका भ्रमण बड़ा ही उपयोगी तथा सार्थक रहा है, यह हम सभी जानते हैं। उन्होंने किन्नौर के भ्रमण के पश्चात् "किन्नर देश" पुस्तक लिखी तथा अन्य जनपदों पर अपनी लेखनी उठा कर शोध के लिए पर्याप्त सामग्री का आधार प्रदान किया। मातृभाषाओं की समस्या लेख में उन्होंने मातृभाषा की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है "मातृभाषा की

हमारी परिभाषा है, जिसके बोलने में अनपढ़ से अनपढ़ आदमी और बच्चा तक भी व्याकरण की गल्ती न कर सके। आप बरसाने के पांच वर्ष के बच्चे के सामने अपनी ब्रज भाषा को बोलें, बच्चे ने व्याकरण का नाम भी न सुना होगा, लेकिन यदि आप कहीं अशुद्ध बोलेंगे तो वह तुरन्त हंस पड़ेगा। बच्चे ने मां के दूध के साथ अपनी "मातृभाषा और भाषा के साथ व्याकरण को अप्रयास सीखा है।" पच्छिमी पहाड़ी को अन्य तीस भाषाओं के साथ गिनाते हुए उन्होंने उक्त निबन्ध में पंजाब, सिन्ध युक्त-प्रान्त, बिहार तथा रियासतों को विभिन्न भाषा जनपदों में बांट दिया और पश्चिमी पहाड़ी का प्रभाव क्षेत्र त्रिगर्त मानते हुए कांगड़ा को उसका केन्द्र बताते हुए अपनी बात कही। वे मातृ-भाषा में शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। उपरोक्त निबन्ध में इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं। मातृभाषाओं को ज्ञान का माध्यम बनाने से शिक्षा की प्रगति कितनी जल्दी हो सकती है, इसका सुन्दर उदाहरण एशियाई रूस के तुर्कमान, उज्बेक, किर्गीज़, कज्जाक आदि जातियां हैं जो 1917 ई० से पहले शिक्षा में भारतीयों से भी अधिक पिछड़ी हुई थीं। जारशाही चाहती नहीं थीं कि वे शिक्षित हों, इसलिए उसने स्कूलों में शिक्षा का माध्यम रूसी बना रखा था। शहर के शिक्षित तरुण तुर्की (टर्की की साहित्य भाषा) को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। तुर्की, मध्य एशिया की इन जातियों को मातृभाषाओं के समीप पड़ती थी, फिर भी मातृभाषाओं के स्थान उसे कैसे मिलता। ज्ञान के आदान-प्रदान की क्षमता प्राप्त करने के लिए रूसी दस साल लेती थी तो तुर्की आठ साल। रूसी वाले और तुर्की वाले जब मध्य-एशियाई जनता को पूर्ण रूप से साक्षर तो क्या शिक्षित भी नहीं देखना चाहते थे। ऐसा जब हाल था तो मध्य-एशिया के जनपदों की मातृभाषाओं की ओर नज़र दौड़ाने की ज़रुरत ही क्या थी। मगर जब 1917 ई० की रूसी जनक्रान्ति के लिए जनता को साक्षर तथा शिक्षित करना जिन्दगी और मौत का सवाल हो गया, क्रान्ति के नायकों का ध्यान जन भाषाओं की ओर गया। तुर्कमानी, उज्बेकी, किर्गिज़ी और कज्ज़ाकी—उस वक्त इन भाषाओं की न कोई लिपि थी, न साहित्य था। इसके विपरीत रूसी और तुर्की साहित्य विशाल

थे लेकिन जनता के पथ-प्रदर्शक भली भांति समझते थे कि सारी जनता को रूसी या तुर्की भाषा पर अधिकार करने के लिए मजबूर करना ठीक नहीं होगा, रूसी तुर्की तथा दूसरी उन्नत भाषाओं में सुरक्षित ज्ञानराशि को तुर्कमानी आदि भाषाओं में बोलियों में उलथा करके जनता के सामने रखा जाए यही अच्छा होगा। उन्होंने ऐसा ही किया और आज से पच्चीस साल पहले एक भी किताब न थी, आज वही ताशकन्द विश्वविद्यालय के विविध कालेजों में शिक्षा का माध्यम है (राहुल सांकृत्यायन के श्रेष्ठ निबन्ध, पृ० 40-41) किन्नौर भ्रमण के दौरान उन्होंने किन्नौरी बोली पर भी अपनी लेखनी उठाते हुए बताया कि इस बोली में किराती, तिब्बती—बर्मी तथा आर्य भाषाओं का मिश्रण है और लगभग 52 प्रतिशत शब्द आर्य भाषाओं के हैं।

"स्वावलम्बन" शीर्षक के निबन्ध में उन्होंने एक संस्मरण इस प्रकार बताया है, "बहुत-से ऐसे देश हैं, जहां और करना वंश-परम्परा से चला आया पेशा नहीं है अर्थात् हज्जामों की जाति नहीं है। दूर क्यों जाइए, हिमालय में ही इसे देखेंगे, वहां यदि जाति का हज्जाम मिलेगा तो नीचे मैदान से आया होगा"। ऊपरी सतलुज (किन्नर देश) में 1948 में मैं विचर रहा था। मुझे कभी तीन-चार महीने में बाल कटवाने की आवश्यकता होती है। यदि कोई अपने केश और दाढ़ी को बढ़ा रखे तो बुरा नहीं है, लेकिन मैं अपने लिए पसन्द नहीं करता। इसीलिए तीन-चार महीने बाद केश छोटा करने की आवश्यकता होती है। चीनी (किन्नर देश) में मुझे जरुरत पड़ी। पता लगा मिडिल स्कूल के हैडमास्टर साहब इसके हथियार भी रखते हैं और अच्छा बनाना भी जानते हैं। यह भी पता लगा कि हैडमास्टर साहब स्वयं भले ही बना दें, लेकिन हथियार को दूसरों के हाथों में नहीं देना चाहते—"लेखनी, पुस्तकं नारी परहस्ते गता-गता" के स्थान पर "लेखनी क्षुरिका कर्त्री परहस्ते गता गता" कहना चाहिए। हैडमास्टर साहब अपना क्षौर शास्त्र मुझे देने में आना-कानी नहीं करते, क्योंकि न देने का कारण उनका यही था कि अनाड़ी आदमी शस्त्र के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करना जानता। उन्होंने आकर स्वयं मेरे बाल काट दिए।" (पृ० 99-

100) "किन्नर देश" में उन्होंने देवी कोठी से विवाह न करने का कारण पूछ लिया और उस देवी के सामने उसके लिए प्रस्तावित वर की बात की थी। सहज होने का यह उद्धरण राहुल के चिन्तन को उजागर करता है।

हिमप्रस्थ पत्रिका में स्व० राहुल के हिमाचल विषयक लेखों का प्रकाशन बड़ी उपयोगी तथा सामयिक योजना थी। मई, 1967 के अंक से "सिरमौर के सबन्ध में लेख प्रकाशित" किया जाना आरम्भ हुआ। इन लेखों में हिमाचल के विभिन्न जनपदों के इतिहास का पहली बार विश्वस्त रूप से प्रकाशन सामने आया। उनके अनुसार "तबकाते नासिरी" 634 हिजरी (4 सितम्बर, 1236—26 जुलाई, 1237 ई०) में सिरमौर का हवाला मिलता है। उस समय रज़िया सुल्ताना दिल्ली में राज्य करती थी। तैमूर ने भी 12 मार्च सन् 1389 ई० को सिरमौर पर आक्रमण किया था जिसका वर्णन उसने अपने आत्मचरित में किया है। अगस्त, 1967 के अंक में सिरमौर के सम्बन्ध में औरंगज़ेब के फरमान की चर्चा भी महत्त्वपूर्ण है। इसी कड़ी का 5वां लेख सितम्बर, 1977 के अंक में प्रकाशित हुआ। इसमें जहांआरा के सन् 1702 ई० के उस पत्र की मूल प्रति दी गई है जिसमें सिरमौर के राजा बुध प्रकाश द्वारा बाज पक्षी तथा मधु की भेंट का उल्लेख है। इसमें मेदिनी प्रकाश (1684-1704 ई०), औरंगजेब के फरमान (1690 ई०), गुरु गोबिन्द सिंह तथा बिलासपुर के राजा भीमचन्द के मध्य भगाणी में हुए युद्ध का वर्णन भी अंकित है। औरंगज़ेब द्वारा वर्ष 1705 ई० में जारी किए गए फरमान में सिरमौर के राजा हरिप्रकाश का उल्लेख है। लेख की सातवीं कड़ी में सिरमौर के सम्बन्ध में मोलाराम के ऐतिहासिक काव्य का उद्धरण अंकित है। इस में बताया गया है कि :—

कूर्मांचल सिरमौरहिं मारे। राज करें दोउ पुत्र तुम्हारे
इह राजा मनमहिं ठहराई। लागे फौंजा रखन सिपाई
प्रथम फौज सिरमौर चढ़ाई। चहुं गिरद से ताक लगाई
गढवैराट फूक सब दीन्यों हेला धाम कालसी कीन्यों
तब सिरमौर सों फौंजा छूटी। जितकी तित गढ़ फौजें कूटी।।

इसी लेखमाला के अन्तर्गत "गोरखा काल" का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है। उस समय के राजाओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—

| | |
|---|---|
| 1. गुलेर-भूपसिंह | 2. जसवां-उमेदसिंह |
| 3. दातारपुर-गोबिन्द चन्द | 4. सीबा-गोबिन्द सिंह |
| 5. चम्बा-जीतसिंह | 6. सुकेत-विक्रम सिंह |
| 7. कुल्लू-विक्रम सिंह | 8. नूरपुर-वीर सिंह |
| 9. बसोली-महेन्द्र सिंह | 10. कुटलैहड़ |
| 11. बिलासपुर-महाचन्द | |

दिसम्बर, 1967 के अंक में हिमाचल प्रदेश के निर्माण तथा सिरमौर के विलय तक की कहानी बताई गई है। इसी पत्रिका में अन्य जनपदों के इतिहास तथा संस्कृति के सम्बन्ध में राहुल जी के लेख प्रकाशित हुए। इन से पता चलता है कि वे हिमाचल प्रदेश के साथ कितने अधिक जुड़े हुए थे। उन द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य के इतिहास के षोडश भाग में इस प्रदेश के अनेक लेखक सहयोजित रहे। इन में डॉ० पद्म चन्द कश्यप, श्री हरिप्रसाद सुमन, डॉ० शमी शर्मा, कृष्ण कुमार नूतन श्री रामदयाल नीरज और अन्य अनेक संस्मरण याद करके इस युग पुरुष को सही श्रद्धांजली भेंट कर सकते हैं। श्री सत्येन शर्मा का भी उनके साथ व्यक्तिगत परिचय रहा है और उनके पास उनके पत्रों का संग्रह भी है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक साहित्यकार भी उन से मिलते रहे। "ऋग्वैदिक आर्य" पुस्तक में विश्व के प्रथम युद्ध "दिवोदास शम्बर युद्ध" के सम्बन्ध में "उदब्रज स्थान, जहां वह युद्ध लड़ा गया था, लिखते हुए उन्होंने बताया था कि यह युद्ध कांगड़ा में लड़ा गया होगा और सम्भव है कि यह वर्तमान नूरपुर जिसका प्राचीन नाम "दभीरी" था, के स्थान पर लड़ा गया होगा। उनके अनुमान के अनुसार कालान्तर में "उदब्रज" "दभीरी" में बदल गया होगा। कुछ भी हो, उन्होंने हिमाचल के इतिहास व संस्कृति पर मूल्यवान शोध किया और उनकी पुस्तक "हिमालय दर्शन" में इसका उल्लेख है। यही नहीं उन्होंने अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखा और उन्हें अपनी डायरियों के माध्यम से चिरंजीवी बना

दिया।

गत दिनों एक विद्वान प्रो० कृष्णनाथ ने सुझाव दिया था कि किन्नर देश तथा अन्य स्थानों पर राहुल के भ्रमण की याद को ताज़ा करने के लिए कुछ बोर्ड (पट) इस उल्लेख के साथ लगाए जाने चाहिए कि वे कब अमुक स्थान पर आए थे यह उपयुक्त ही है कि महापण्डित राहुल द्वारा इस क्षेत्र के सम्बन्ध में जो भी लिखा गया है, उसे पुस्तक रूप में संकलित करके प्रकाशित किया जाए।

यह संयोग ही है कि राहुल बिलासपुर भी आए और उन्होंने यहां एक छोटे से होटल में रात बिताई तथा बाद में भूतपूर्व नरेश राजा आनन्द चन्द के अतिथि रहे। उनका देहावसान 14 अप्रैल, 1963 ई० में हुआ।

(यह शोध पत्र दिनांक 14 अप्रैल, 1989 को अकादमी द्वारा आयोजित साहित्य सम्मेलन में पढ़ा गया था।)

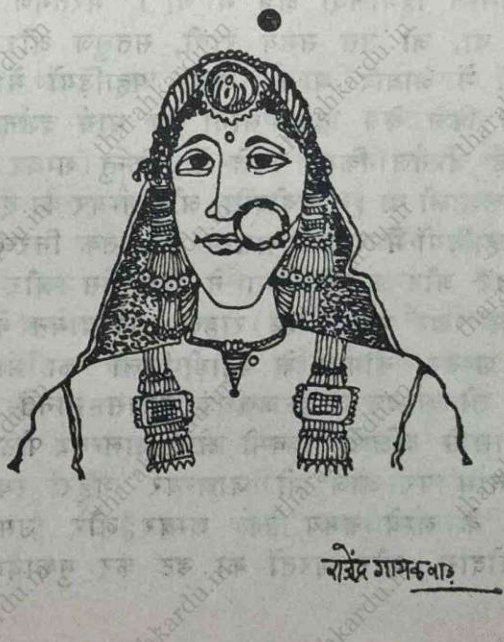

# विपाशा, शतद्रु और दाशराज्ञ

ठाकुर जयकिशन सिंह

ऋग्वेद काल के तीसरे दौर में आर्य लोग खेती-बाड़ी और पशु पालन के कार्यों के साथ-साथ लड़ाकू और विजेता के रूप में सप्त सिंधु में छा गये थे। सप्त सिंधु और सिंधु वादी के मैदानों में जो लोग उनके मुकाबले में थे, उन्हें वे समाप्त कर रहे थे। आर्यों के विभिन्न कबीले विभिन्न स्थानों पर अधिकार जमाने में व्यस्त थे।

उस काल में भरतगण का राजा दिवोदास हुआ करता था। वह बहुत ही शक्तिशाली आर्य राजा था। उन्हीं दिनों हिमालय क्षेत्र में दस्युराज शम्बर भी राज्य करता था। उसकी बहादुरी का बोलबाला समस्त हिमालयी क्षेत्र में था। भरतगण आर्यों का वह कबीला था, जो उस समय रावी, सतलुज और ब्यास के पहाड़ी क्षेत्रों में आबाद था। उन्हीं पहाड़ियों में दस्युराज शम्बर के सौ किले थे। दस्यु लोगों का मार्ग दर्शन और भी कई छोटे-बड़े जरनैल किया करते थे किन्तु शम्बर उन सब में अत्यन्त बलशाली था। दिवोदास और शम्बर का एक भयानक युद्ध उन्ही पहाड़ियों में लगभग चालीस वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। शम्बर और उसकी सेना ने दिवोदास और भरतों के नाकों दम कर रखा था। श्री राहुल सांकृत्यायन के विचारों के अनुसार शम्बर कांगड़ा के पहाड़ी-किलों का मालिक था, बल्कि राहुल तो शम्बर को ही जलंधर राक्षस मानते हैं, जिसके नाम पर व्यास से दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र जालन्धर पीठ कहलाता है, जिसके नाम पर आज भी जालन्धर शहर स्थापित है। चालीस वर्ष के लम्बे समय तक शम्बर और उसके पहाड़ी दासों ने दिवोदास और भरतों का डट कर मुकाबला किया,

किन्तु अन्त में शम्बर को इन्द्र देवता की सहायता लेकर मार गिराया गया । उसके सौ में से निन्यानवे किले भी नष्ट हुए, बचे हुए किले पर दिवोदास ने अपना आधिपत्य कर लिया । विद्वानों का मत है कि कांगड़ा का वर्तमान किला ही शम्बर का शेष बचा किला है, जो उन्नीसवी सदी तक भी अजेय समझा जाता था, और जो अपने में एक रहस्य............एक सुन्दर और उदासीन कहानी छुपाये हुए है ।

ऋग्वेद की ऋचाओं में शम्बर युद्ध और दिवोदास की विजयों का वर्णन सर्वत्र मिलता है। भारद्वाज, वशिष्ठ और वामदेव जैसे ऋषियों ने इस सम्बन्ध में इन्द्र देवता के सिर पर इस विजय का सेहरा लगाने के लिए ऋचायें कही हैं। उनसे पता चलाता है कि शम्बर पहाड़ों में रहने वाला दस्यु राजा था (ऋग्वेद 5/26/6) तथा यह कि चालीस वर्षों में उसे मारने में आर्यों को सफलता मिली (ऋग्वेद 11/12/2) । एक ऋचा में लिखा है कि हे इन्द्र वह सोम तुम्हारे लिए हाजिर हैं, जिससे शक्ति पाकर तुमने दिवोदास के लिए शम्बर को मारा (ऋग्वेद 1/43/6) ।

शम्बर कौन था ? इस बारे में विद्वानों के विभिन्न मत हैं । ऋग्वेद के अनुसार वह दस्यु तो था ही परन्तु दस्यु तो उस समय उस हर आदमी को कहा जाता था, जो आर्यों की संस्कृति को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होता था । राहुल लिखते हैं कि शम्बर किरात जाति से था। किरात लोग हिमालय की तराई में नीचे तक फैले हुए थे किन्तु शम्बर के बारे में ऋषि वामदेव ऋग्वेद की ऋचा (14/30/4) में लिखते हैं कि इन्द्र ने दास 'कोलितर शम्बरम्' को बड़े पर्वतों के अन्दर मारा। उस से स्पष्ट हो जाता है कि शम्बर किरात जाति से नहीं बल्कि कोल जाति से था। उस समय पहाड़ों में कोल जाति भी काफी प्रभावित हुई है। आज भी पहाड़ों में कोल जाति से सम्बन्धित लोग हैं, जिन्हें आज 'कोली' अथवा 'कोलटा' कह कर पुकारा जाता है।

शम्बर जैसे महान् शक्तिशाली दस्यु राज पर विजय प्राप्त करने के बाद दिवोदास ने आर्य जाति को मजबूत बना दिया। यद्यपि दस्यु लोगों को काफी हद तक कमजोर कर दिया गया था तथापि कहीं-कहीं वे लोग एकत्र होकर शक्ति का प्रदर्शन कर लेते थे और फिर आर्य लोगों के लिए खतरा बन जाते थे। दोनों जातियों में संघर्ष तो था ही, अब दिवोदास के बाद आर्य गणों में आपस में भी टकराव होने लगे। उधर शम्बर का लड़का **भेद** जिसे ऋषि विश्वामित्र ने पाला था, अपने बाप का बदला लेने के लिए अपनी शक्ति संगठित करने लगा। दिवोदास का लड़का सुदास अपने पिता की भान्ति ही बहादुर और साहसी था। दिवोदास ने सिन्धु से लेकर सरस्वती तक और हिमालय की बाहरी तथा भीतरी घाटियों में जो अधिकार कायम किया था, उसे बरकरार रखना अब सुदास की जिम्मेदारी थी। दिवोदास ने सारे सप्त सिन्धु के आर्य गणों में एकता स्थापित करने के लिए जीवन भर जान लड़ाई और अपने शासन काल में वह सफल भी रहा, किन्तु दुर्भाग्यवश दिवोदास की मृत्यु के पश्चात् आर्य जनपद इसके लिए तैयार न हो सके।

जिस समय सुदास ने शासन सम्भाला, उस समय वशिष्ठ और विश्वामित्र दो बड़े मार्ग दर्शक नेता थे। दिवोदास के समय जो गौरव ऋषि भारद्वाज को प्राप्त था, अब वह गौरव विश्वामित्र को हासिल हुआ। विश्वामित्र सुदास के पुरोहित नियुक्त हुए। विश्वामित्र राजा गांधी पुत्र थे, किन्तु विद्या और अध्यात्मिकता में किसी ब्राह्मण ऋषि से कम नहीं थे। उधर विद्वता के कारण वशिष्ठ की धाक समूचे सप्तसिन्धु में थी। ऋग्वेद में उन्हें 'शत्यातु' अर्थात् सौ जादू जानने वाला भी कहा गया है।

विश्वामित्र और वशिष्ठ के विचारों में सिद्धान्तिक रूप से कुछ मतभेद उत्पन्न हो गये। विश्वामित्र चाहते थे कि यदि दस्यु लोग आर्य देवताओं की शरण में आ जाये और आर्यों के सामाजिक तथा शिष्टाचार के नियमों को ठीक ढंग से अपना लें तो उन्हें अपनी जाति के क्षेत्र में स्वीकार कर लिया जाना चाहिए

किन्तु वशिष्ठ उसके विरूद्ध थे। उनका विचार था कि यदि आर्य जाति ने फैलना है और उसे दृढ़ता से अपने कदम जमाने है तो नियमों में ढील देने की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। आर्यों का रक्त शुद्ध रहना चाहिए और पूरे संस्कारों के बिना दासों को अपने में शामिल नहीं करना चाहिए। वे सच्चाई के मुकाबले झूठ, कपट और बेइमानी से सुलह करने को तैयार नहीं थे। दोनों नेताओं के बीच इस असूली टकराव के अतिरिक्त एक और घटना इस प्रकार से पेश आई कि सुदास ने भी विश्वामित्र के विचारों से असहमति रखते हुए उन्हें पुरोहित पद से वंचित कर दिया। उस जमाने में राजा का पुरोहित ही उसकी सेना का सेनापति भी हुआ करता था। अत: विश्वामित्र अब सुदास के सेनापति भी न रहे और उनकी जगह वशिष्ठ को पुरोहित नियुक्त कर दिया गया। इस घटना ने जलती पर तेल का काम किया। चाहे सुदास ने वशिष्ठ को उनकी महान् विद्वता से प्रभावित होकर ही अपना पुरोहित बनाया हो परन्तु स्वाभाविक रूप से विश्वामित्र इस घटना से भड़क उठे और अपनी टेक के लिए बदला लेने की ठान ली। उन्होंने दस आर्य जनपदों के राजाओं को एकत्र करके सुदास के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। दस राजाओं की इस लड़ाई को ही ऋग्वेद में "दाश राज्ञ" का नाम दिया गया है।

उन दस जनपदों में पांच जनपद पुरू, यदु, अनु, तुर्वसु और द्रुहयु बड़े थे और शेष पांच अलिन, पक्थ, भलानस शिव और विशाणी छोटे जनपद थे। पुरू जनपद बहुत पहले परूष्णी (रावी) के पूर्व में स्थापित हुआ करता था। ऋग्वेद काल में उसकी कई शाखायें हुईं। जिनमें भरत, तृत्सु और कुष्क विशेष थीं। विश्वामित्र कुष्क जनपद के नेता थे। सुदास पुरूभरत कहलाते थे। तृत्सु और भरत लोगों की पहले आपस में नहीं बनती थी परन्तु अब सुदास द्वारा राज्य अधिकार सम्भालने पर भरत और तृत्सु एक हो गये। असली पुरूजन उस समय तक अपनी ही शाखा अर्थात् भरत तृत्सुओं से इतने कट चुके थे कि सुदास के विरूद्ध विद्रोह करने में वे सब से आगे थे।

भरत जनपद भी पहले रावी के किनारे पर आबाद था। ऋग्वेद काल के दूसरे दौर में वह विपाशा (व्यास) और शतद्रु (सतलुज) तक बढ़ा। आखिर तीसरे दौर में सरस्वती और यमुना तक उसका फैलाव हुआ। यही भरत जनपद था, जिसके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। तृत्सु जनपद भी विपाशा और शतद्रु की वादियों में आबाद था, जिनमें विशेषत: कुल्लू तथा कांगड़ा के इलाके शामिल थे। इस जनपद के अधिष्ठाता वशिष्ठ थे और शायद इर्द-गिर्द के दूर-दूर के इलाकों तक वशिष्ठ आश्रम इसी वजह से कुल्लू और वशिष्ठ की मान्यता आज तक कायम है।

पांच बड़े जनपद, जिन्हें पंचजन भी कहते हैं, वितस्ता (जेहलम) के पूर्व का और सप्तसिन्धु में आबाद थे और छोटे पांच जनपद जेहलम और सिन्धु नदी के पश्चिम में दूर अफगानिस्तान, काब्लीस्तान और काफरीस्तान में रहते थे और ये सुदास के कट्टर शत्रु थे। दासराज्ञ लड़ाई परूष्णी (रावी) के पूर्वी किनारे पर लड़ी गई। इधर पांच छोटे जनपदों ने रावी पार करके भरत और तृत्सुओं के भू-खण्ड पर आक्रमण किया और उधर दक्षिण-पूर्व से पांच बड़े जनपदों ने इस पर धावा बोल दिया। परिणाम स्वरुप सुदास चारों ओर से घिर गया। ऋग्वेद की ऋचा (8/81/7) के अनुसार वशिष्ठ इस बात को प्रभावित करते हैं कि दाशराज्ञ में चारों ओर से घिरे सुदास की इन्द्र व वरूण ने सहायता की। सम्भवत: इस अवस्था पर ऋग्वेद की रचना में उन ऋचाओं का निर्माण हुआ, जिन्हें ऋग्वेद में काव्य मार्मिकता, साहित्य और कल्पना का सर्वश्रेष्ठ नमूना स्वीकार किया जाता है।

उन ऋचाओं में विश्वामित्र ने विपाशा और शतद्रु से बड़े सम्मान और श्रद्धा से प्रार्थना की है "कि उसे और उसकी सेनाओं को पार उतरने के लिए अपने पानी के बहाव को कम कर दें और इतना उतार दें कि वे सुविधा से दूसरी ओर जा सकें।" यह प्रार्थना ऋग्वेद के मण्डल 3 सूक्त 33 की ऋचा संख्या-1 से आरम्भ होकर सं.-12 पर समाप्त होती है। ऋषि विश्वामित्र और इन दोनों नदियों के बीच परस्पर वार्तालाप ऋग्वेद की वह साहित्यिक रचना है, जिसकी कोई भी अनुसंधानकर्त्ता प्रशंसा

किए बगैर नहीं रह सकता। प्रसिद्व जर्मन विद्वान रीगोज़िन अपनी पुस्तक 'वैदिक इण्डिया' में लिखते हैं "यह ऐतिहासिक प्रलेख भी ऋग्वेद के दोष रहित काव्यात्मक सर्व श्रेष्ठ रचनों में से एक है।"

ऋषि विश्वामित्र और नदियों के उस वार्तालाप के परिणाम स्वरुप नदियों का पानी इस कदर नीचे उतर गया कि उनकी सेना आसानी से उस पार जा सकी और दाशराज्ञ में शामिल हो सकी। रावी के किनारे भयानक युद्ध हुआ। सुदास की सेना को भारी नुकसान का सामना करना पड़ा। पुरू जनपद अपने बाकी साथियों समेत बुरी तरह पराजित हुआ। कहा जाता है कि सुदास और उसके सहयोगी जनपदों के छियासठ हज़ार आदमी इस युद्ध में काम आये।

दूसरी ओर वशिष्ठ भी यह दावा करते हैं कि उनकी प्रार्थना पर इन्द्र ने नदियों को भरतों के लिए पारगम्य बना दिया, (ऋग्वेद 5/18/7)। किन्तु यह एक लम्बी बहस का विषय है कि दोनों ही बातें ठीक हैं दोनों ही सेनाओं ने अपने-अपने समय और अपने-अपने स्थान पर विपाशा और शतद्रु को परिस्थिति के अनुसार पार किया परन्तु यह सब हुआ दाशराज्ञ में भाग लेने के लिए और दाशराज्ञ हुआ दो असूलों का फैसला करने के लिए। वशिष्ठ ने अन्ततः अपने विचार संसार के समक्ष रखे हैं। उन्होंने कहा कि "मैं मानवता के आधार पर समानता के सिद्धन्तों को मानता हूं फिर भी यदि मैं दाशराज्ञ को शुरू न करता तो संसार अनार्यत्व को ही आर्यत्व समझ बैठता। झूठ को सच्चाई और बुराई को ही भलाई समझ लेता। तब आने वाली नस्लों में बुराइयों के विरूद्ध लड़ने का साहस न होता।" कितनी अनमोल सच्चाई है वशिष्ठ के उपरोक्त शब्दों में, जो ऋग्वेद के रचना काल में कहे गये और फिर इन्हीं विचारों पर अमल किया भगवान राम ने। उन्हीं को दृष्टि में रख कर अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार किया श्री कृष्ण ने। अवतार, दार्शनिक, सुधारक आदि सभी इस विचार को सामने रख कर जीवन में संघर्ष करते रहे—आज भी कर रहे हैं।

'दाशराज्ञ से पहले भी लड़ाइयां हुईं, किन्तु उनमें और दासराज्ञ में अन्तर है। पहली लड़ाइयां देवतओं और असुरों में हुईं

आर्यों और दस्युओं में हुईं और केवल एक दूसरे पर अधिकार प्राप्त करने के लिए हुईं, किन्तु दाशराज्ञ आर्यों के अपने ही बीच सिद्धान्त और विचारधारा की पहली लड़ाई थी, जिसमें एक उच्च विचारधारा को जीवित रखने के लिए तलवार उठाई गई। बुराई के विरूद्ध भलाई को स्थापित करने के लिए युद्ध हुआ। आर्य संस्कृति के प्रारम्भिक दौर में ही यदि एक बुराई को स्वीकार कर लिया जाता तो सम्भवतः बुराई के विरूद्ध हाथ उठाने और उसे दमन करने का कभी भी विचार पैदा न होता और यह विचार उस समय पैदा होकर हमारे मन में जागृत न रहता तो संसार की अन्य जातियों की तरह हम भी युग की किसी एक चोट से ही कब के नष्ट गये होते। यदि हम जीवित हैं.........मानवता यदि जीवित है तो केवल उस विचारधारा के कारण, जिसने दाशराज्ञ को जन्म दिया। अतः आर्यों में किसी गलत सिद्धान्त के विरूद्ध खड़े होने की भावना जागृत करने और स्थाई बनाने के लिए दाशराज्ञ का होना आवश्यक था परन्तु यह दाशराज्ञ सम्भवतः न हो सकता यदि विपाशा और शतद्रु ने विश्वामित्र की प्रार्थना को स्वीकार न किया होता और वशिष्ठ की प्रार्थना के अनुसार इन्द्र ने इन नदियों को पारगम्य न बनाया होता। अतएव, उस विचार को संसार के सामने लाने में तो वस्तुतः विपाशा और शतद्रु को कृपायें छुपी हुईं हैं, जिन्होंने दोनों ओर की सेनाओं को लड़ने योग्य बनाया और भलाई को बुराई पर विजय पाने का अवसर प्रदान किया। यदि सेतुबन्ध रामेश्वरम् ने भगवान राम को रावण पर विजय पाने के योग्य बनाया तो अवश्यमेव विपाश और शतद्रु ने भी सेनाओं को रास्ता देकर एक ऊंचे आदर्श की पूर्ति में सहायता की।

यदि गंगा के नाम से भारत की महानता बढ़ती है और गांधी के नाम से भारत का नाम बड़ा होता है, और यदि सेतुबन्ध रामेश्वरम् को हम आज एक महान् तीर्थ का दर्जा देते हैं, तो कोई कारण नहीं कि विपाशा और शतद्रु के भू-खण्ड भी महान् और पवित्र होने का दावा न करें। जहां से ये नदियां निकलती हैं और सप्तसिन्धु के मैदानों को हराभरा एवं खुशहाल बनाती हैं, वह समस्त क्षेत्र एक सुलझी हुई संस्कृति

को जन्म देने वाला हैं। युग-युग में भारत में भलाई के लिए बुराई पर विजय पाने के स्रोत यहीं से पनपे हैं। अतः विपाशा और शतद्रु का दर्जा महान् और श्रद्धा योग्य था, है और होगा।

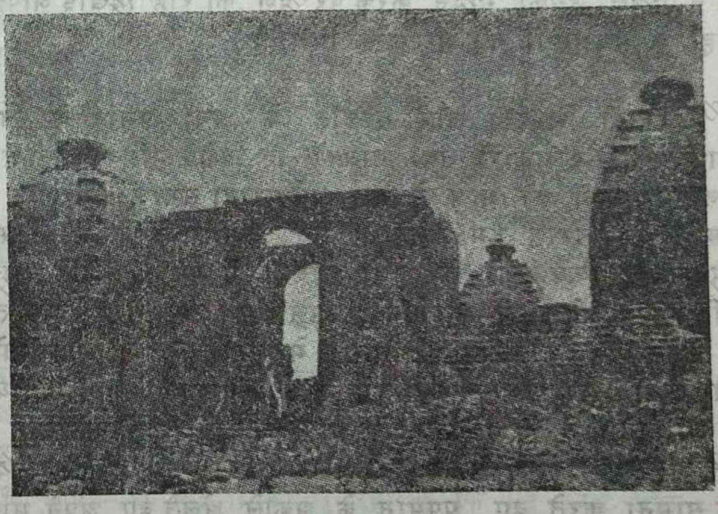

पौंग झील का बाथू मन्दिर (प्राचीन) जो गर्मियों में पूर्ववत् निकल आता है।

# हिमाचल का प्रसिद्ध लोक गायक काकू राम

**मदन हिमाचली**

हिमाचल प्रदेश की पावन धरा पर अनेक ऋषि मुनियों, साहित्यकारों शिक्षा विदों तथा कलाकारों ने अपने जन्म से, इस पहाड़ी प्रदेश की माटी के एक-एक कण को पवित्र किया है। यहां की सभ्यता व संस्कृति इतनी प्राचीन है कि ऋषि मुनियों ने न केवल उसका गायन करके पूरे देश को राह दिखाई अपितु, यहां के निवासियों को भी धन्य किया है।

हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए साहित्यकारों-कलाकारों तथा गायकों की विशेष भूमिका रही है। यद्यपि गायकों को आज से कुछ वर्ष पुराना समाज हेय दृष्टि से देखता था परन्तु हम कृतज्ञ हैं उन कलाकारों के जो किसी की परवाह किये बिना कला की साधना में लगे रहे और आज यदि अपने प्रदेश की सांस्कृतिक उपलब्धियों पर नज़र डाले तो न केवल देश में अपितु पूरे संसार में हिमाचल के लोकगीतों, लोकनृत्यों तथा लोकनाट्यों ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया है जो हम सभी के लिए गौरव का विषय है। हमें अभिमान है उन गायकों, कलाकारों व कवियों और लेखकों पर, जो कठिनाइयों का सामना करते हुए, अपमान के झकोले झेलते हुए अपने मार्ग पर अडिग रहे और हिमाचल की सभ्यता व संस्कृति को न केवल स्वर देकर, अपना अपितु प्रदेश का नाम भी ऊंचा किया।

ऐसी ही एक प्रतिभा थी जिन्हें काकू राम के नाम से जाना था। काकू राम का जन्म तह. कण्डाघाट जिला सोलन के मही नामक गांव में 1896 में एक साधारण परिवार में हुआ था।

बचपन से ही काकू राम का संगीत के प्रति लगाव था। कहते हैं कि बचपन में जब वे किसी को गाते बजाते सुनते थे तो दौड़े-दौड़े वहां पहुंच जाते थे, लेकिन उस समय कौन जानता था कि सरस्वती का वरद् पुत्र अल्पायु में ही नाम कमा जायेगा।

काकू राम की आवाज इतनी सुरीली थी कि गीत प्रेमी को उनके प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक था। उन्होंने उठते-बैठते तथा विशेष कर डंगर चराते लोकगीतों का गायन जारी रखा, और जब वे 18 वर्ष के थे, तो उनकी रचना "बेलुआ-बेलुआ-बेलुआ हो" आकाशवाणी जालन्धर से, प्रथम H. M. V. रिकार्ड के माध्यम से प्रसारित हुई थी, और पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पहाड़ी गायक की वह H. M. V. रिकार्ड व प्रसारित होने वाली पहली रचना थी। उसके पश्चात् काकू राम सफलता की सीढ़ियां चढ़ते चले गये और बघाट तथा क्योंथल के राजाओं की राजसभा में राजगायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। जब पटियाला रियासत के महाराज भूपेन्द्र सिंह तक काकू राम के चर्चे पहुंचे तो उन्होंने सर्व प्रथम उन पर अपना अधिकार समझा क्योंकि कण्डाघाट का क्षेत्र पटियाला रियासत में ही पड़ता था। उनकी सभा में काकू राम ठीक उसी प्रकार से शोभाय मान होने लगे, जैसे राजा भोज की राजसभा में कालीदास सुशोभित होते थे।

काकू राम केवल लोक नायक ही नहीं थे अपितु वे ग़ज़ल, ठुमरी व शास्त्रीय गीतों के भी सफल गायक थे। उन्होंने शास्त्रीय गायन हकीम चांद राम (पटियाला) से सीखा था, जो उनके गुरू थे।

इस गायक की यह विशेषता रही है कि यह स्वयं लोक गीत की रचना करते थे और उसे ही स्वर बद्ध करके गाते थे, इन्होंने ब्राह्मणा रा छोरु, छाडडी दे एस गद्दणी रा दोहड़ इत्यादि लोकगीतों के अतिरिक्त नाटियां भी सफलता पूर्वक गाईं, जिनके कुछ अंश पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं, रोहणी दे रोहणी दे मेरा गुण्दा (हुक्का)

कणीरी खातिरी लागा रुंदा...........।

मेरी शावणिये म्हारे देखनी दिल्ली, खड्डी राखे
मोटरो ता धिन्ना..........इत्यादि।

इसके अतिरिक्त उस समय का मांगी लोकगीत जो झुरी से मिलता जुलता है, इस कलाकार द्वारा स्वयं रचित इन पंक्तियों द्वारा गाया गया था-गाई लैणी बोलो मांगिये........इत्यादि। इस गायक की सभी रचनायें रिकार्ड के रूप में आज भी इनके सबसे कनिष्ठ पुत्र राजेन्द्र कश्यप धरोहर के रूप में सम्भाले हुए हैं।

काकू राम के चार पुत्र और तीन पुत्रियां हैं, इनकी पत्नि श्रीमती शान्ती देवी आकाशवाणी शिमला की सबसे पुरानी लोक गीत गायिकाओं में से एक रही हैं, जिन्हें श्रोताओं द्वारा स्वर कोकिला की संज्ञा से सजाया गया था।

काकू राम केवल गायक या गीत कार ही नहीं थे अपितु यह समाज सेवी तथा एक दूसरे के दुःख सुख बंटाने वाले सहृदय व्यक्ति भी थे। गांव में सुख-दःख में काकू राम सबसे आगे रहते थे। यह आर्य समाज के कट्टर प्रचारक थे, उसी के प्रचार प्रसार के लिए इन्होंने अनेक गीत व पहाड़ी रचायें लिखी व गाईं जिनमें मशहूर है :

जुणिये बाजा वेदोरा डांका, से ऋषि
दयानन्दो बड़ा बांका............इत्यादि।

यह कितने पढ़े लिखे थे, पूर्व रूपेण जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है परन्तु इतनी जानकारी अवश्य मिली है कि इन्हें हिन्दी, उर्दू, पञ्जाबी व संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। यह स्पष्ट वक्ता तो थे ही, साथ ही समयानुसार, उक्त भाषाओं के मुहाबरों लोकोक्तियों का प्रयोग भी सुचारू ढंग से किया करते थे। 1958 में इस महान् गायक ने नश्वर शरीर को त्याग दिया था।

पहाड़ी गीतों को काकू राम ने उस समय स्वर दिया था, जब यह पहाड़ी प्रदेश लोक गायन की दृष्टि से लगभग अनजान था। हमारा समाज विशेष कर संगीतज्ञ समाज भले ही इस महान् कलाकार को भुला दें परन्तु ये आज भी अपने कार्यों तथा सुरीली आवाज के माध्यम से जीवित हैं,

●

शिमला जिले में एक मेले के अवसर पर देवताओं का—नृत्य

# लोकोत्सव में कठियाला की भूमिका

रामलाल पाठक

सृष्टि पर ज्यों-ज्यों मानव के जीवन स्तर में विकास हुआ, त्यों-त्यों ही समाज में व्यवस्था का भी सुधार हुआ। पारस्परिक विचारों के आदान-प्रदान तथा आपसी मेल-मिलाप के लिए लोकोत्सव होने लगे। लोकोत्सव में उपयोग किया जाने वाले सामान की व्यवस्था करने के लिए समाज के किसी विशिष्ट व्यक्ति को यह उत्तरदायित्व सौंपा गया, जो आवश्यकता अनुसार उस सामग्री का भुगतान करता। इस व्यक्ति को समाज में 'कठियाला' की संज्ञा मिली। कठियाला का सीधा सा अर्थ है जो सारी उपयोग में आने वाली वस्तुओं को इक्ट्ठा रखता है। लोकोत्सव में कठियाला का विशिष्ट स्थान है। कठियालचारी का प्रचलन समाज में कब से हुआ होगा, यह बताना कठिन है परन्तु इतना कहा जा सकता है कि यह प्रथा भी उतनी पुरानी है जितनी लोकोत्सव की परम्परा। इस व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध सामाजिक ढांचे से हैं। जिस तरह लोक सेवा को शासन और प्रशासन व्यवस्था से जोड़ा गया और लोक सेवा में जहां चयनित उम्मीदवार शासन व्यवस्था से जुड़े उसी तरह कुछ लोगों का लोक मानस से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया।

'कठियाला' समाज में निःशुल्क भाव से सेवारत है जिस का शासन या प्रशासन से कोई सम्बन्ध नहीं है, लेकिन फिर भी यह बड़ी प्रतिष्ठा का पद है। कारज करने वाला व्यक्ति अपना सारा दायित्व कठियाला को सौंप देता है। कारज करने वाले को "घरवारी" कहा जाता है। पूरे आयोजन में कठियाला "घरवारी" से भी ज्यादा प्रभावी होता है, लेकिन यह पद तब तक

ही होता है, जब तक कारज सम्पन्न नहीं होता। वह बड़ी समझदारी से अपने अधिकारों का प्रयोग करता है। लोकोत्सव की सारी व्यवस्था कठियाला के हाथ में होती है। लोक कहावत के अनुसार कठियाला वही होता है जो समाज का सबसे समझदार व कंजूस प्रवृति का व्यक्ति हो। लोकोत्सव में कठियाला की दो श्रेणियां प्रमुख है। पहली श्रेणी में खाद्य सामग्री का भण्डारी और दूसरी श्रेणी के कठियाले के पास अर्थ-व्यवस्था की जिम्मेदारी होती है। विवाहोत्सव पर दो कठियालों की आवश्यकता होती है कारज करने वाला व्यक्ति सारी सामग्री एक कमरे में रख देता है और कठियाला को उसकी पूरी जानकारी दे देता है। यद्यपि उसकी कोई लिखित सूची नहीं होती फिर भी उसे अपनी सूझबूझ तथा अनुभव से लागत का अनुमान होता है। ऐसा व्यक्ति पांच-सात गांव में एक होता है, जिसे सब गांव वाले अपने कारज में बुलाते हैं। वह चाहे किसी भी कार्य में कितना भी व्यस्त क्यों न हो परन्तु कठियाला-चारी के लिए बिना शर्त तैयार हो जाता है। विवाहोत्सव में जो खाद्य सामग्री का कठियाला होता है उसके अधीनस्थ धाम बनाने की पूरी जिम्मेदारी होती है। कठियाला को अनुमानित जानकारी होती है कि धाम में कितने लोगों की भोजन व्यवस्था करनी है। रसोई बनवाने के लिए प्रत्येक चीज की मात्रा वही निश्चित करता है। वह "घरवारी" से कारज में आमन्त्रित लोगों की संख्या की जानकारी लेता है। निमन्त्रण दो प्रकार का है। किसी परिवार के एक ही व्यक्ति को निमन्त्रण होता है इसे स्थानीय बोली में "कोहरा नियुन्दा" कहा जाता है। दूसरी प्रकार का निमन्त्रण सपरिवार होता है जिसे "सद्बरा नियुन्दा कहा जाता है। इसके पश्चात् कठियाला जितनी चीज रसोईए को देता है उसमें सवा भाग जरुर ढाल देता है। यदि पांच मन चावल पकाने हो तो वह सवा पांच मन देता है। इस के अतिरिक्त वह दूसरी चीजें तोलने के वगैर ही दे देता है। कठियाला प्रमुख रसोईए जिसे "बोटी या स्याण" कहा जाता है, उसकी सलाह से ही सामग्री देता है। रसोईयों के सहयोग के लिए गांव और भाईचारे के लोग होते है। उन्हें भी किसी प्रकार की दैनिकी या भत्ता नहीं दिया जाता।

यदि प्रमुख रसोईया कोई चीज एक किलो ग्राम मांगता है तो कठियाला उसमें कंजूसी बरत लेता है। अर्थात् सौ-दो सौ ग्राम चीज कम देता है। इस पर कई बार प्रमुख रसोईए से भी उसकी ठन जाती है परन्तु वह उसकी परवाह नहीं करता है क्योंकि रसोईए ने भी धाम बनाने के लिए अपनी प्रतिष्ठा बरकरार रखनी होती है। स्वादिष्ट भोजन पकाने के लिए उसे हर चीज की उचित मात्रा चाहिए होती है, लेकिन कठियाला ने भी बड़ी कुशलता से अपनी भूमिका निभानी होती है। कई बार रसोईए भी कठियाला से उसकी कंजूसी को ले कर शरारत कर देते हैं। जब वह खाना खाने बैठता है तो रसोईए उसे अधिक नमक या मिर्च डालकर दाल या सब्जी देते हैं। तो वह रसोईयों को पूछता है रसोईए दूसरे लोगों से पूछते है जो खाना खाने लगे होते हैं, वे तो रसोईयों की प्रशंसा करते है कि बहुत स्वादिष्ट धाम बनाई है तो कठियाला समझ जाता है कि यह तो मेरे साथ शरारत की है। दूध, घी तथा लस्सी आदि भी उसके अधीनस्थ होती है। बीड़ी तम्बाकू देना भी उसका ही दायित्व होता है। विवाहोत्सव के उपरान्त वह सारी बची हुई चीजें "घरवारी" को सौंप देता है।

दूसरी श्रेणी का कठियाला अर्थ-व्यवस्था का जिम्मेदार होता है वह खाद्य सामग्री वाले कठियाला से अधिक प्रतिष्ठित होता है। वह बारात के साथ जाता है। नव वधु को दिए जाने वाले जेवरात, कपड़े तथा मन्यारी को ले जाने के लिए एक ट्रंक प्रयोग में लाया जाता है। जिसे "पटारी" कहा जाता है। इस ट्रंक को नाई उठाता है परन्तु उसकी चाबियां कठियाला के पास होती है। रुपये पैसे भी उसी ट्रंक में होते हैं। एक थैली में छोटे सिक्के भी होते हैं। जब पण्डित पूजन आदि करवाने लगते हैं तो कठियाला से पैसे मांगते है। यदि पुरोहित चार आने मांगे तो वह बीस पैसे से भी काम चला देता है।

इसी प्रकार वधु पक्ष की ओर से भी कठियाला होता है। लग्न-वेदी का खर्च प्रायः वह ही देता है। वह भी कम से कम खर्च करता है। कई बार तो वह सुनकर भी अनसुना

कर देता है यदि पण्डित दो-तीन बार उससे न मांगे। वधु पक्ष का कठियाला केवल वेदी के काम तक ही होता है। लेकिन वर पक्ष का कठियाला बाजे वालों का, पालकी के कहारों का, नगारे वालों का तथा रणसिंगे वाले के अतिरिक्त नाई का भी विशेष ध्यान रखता हैं। समय-समय पर उन्हें रुपया-दो रुपये भी थमा देता है। बारातियों की बीड़ी सिगरेट या तम्बाकू भी उसी ट्रंक में होता है। वधु पक्ष को गहने-कपड़े तथा मन्यारी आदि भी कठियाला ही दिखाता है। वह खुले आंगण में पटारी खोलता है और एक-एक चीज उपस्थित जन-समूह को दिखाता है। वहां महिलाये कठियाले का उपहास उड़ाती हुई यह गीत गाती हैं।

"पैईसा त्हेला मुकी गया,
कठियाले रा मूंह सुकी गया।"

इस गीत में कहा गया है कि वर पक्ष की ओर से जो पैसा कठियाला के पास था वह खत्म होने लगा है। उसके साथ ही कठियाले के मुंह की लाली भी उतरनें लगी है। शर्म के मारे उसके मुंह का थूक भी सूख गया है। इस लिए वर पक्ष का कठियालों की समाज में विशेष प्रतिष्ठा होती है। वह जन-समूह के सामने लेन-देन करता है। जो चीज किसी को देनी होती है वह भी देता है और वधु पक्ष की ओर से मिलने वाले कपड़े आदि भी अपने पास रखता है। जो चीज कठियाले से मांग कर ली जाती है किस की क्या मज़ाल कि वह कठियाले को वापिस न करें।

बारात की वापसी पर जब विवाहोत्सव सम्पन्न हो जाता है तो कठियाला उन लोगों को पैसे देता है जिन्होंने मेहनत मजदूरी की होती है। वैसे बाज़ा बजाने वाले, पालकी उठाने वाले कहार, बिस्तर उठाने वाला (सौहड़ वाला), रसोईये को, पानी भरने वाले को नगारा बजाने वाले को, रणसिहें वाले को, पतले लगाने वाले को, नाई और पुरोहित को पैसे का भुगतान करता है। राशि का भुगतान करते समय कठियाला उन सब

का दिन प्रतिदिन की मंहगाई और "घरवारी" की मजबूरियों की ओर भी ध्यान दिलाता है। अपने उत्तरदायित्व की सफाई करते हुए वह उन से यह भी कहता है कि आज के समय में कारज करना मुश्किल है। ऐसी परिचर्चा के बाद वह उन्हें पैसे देने लगता है। जितने वे लोग मांगते है वह उससे कम ही देता है। उनकी कठियाला के साथ कई बार झड़पे हो जाती हैं। लेनदार यहां तक कह देते है कि "घरवारी की ओर से कोई फर्क नहीं है परन्तु कठियाला कंजूस है। जैसे तैसे भी हो वह उन्हें मना ही लेता है।

चाहे कुछ भी कहे परन्तु कठियाला समाज का सच्चा लोक सेवक है जो निःस्वार्थ भावना से दूसरों का कार्य बड़ी कुशलता से करता है वह "घरवारी" के लिए बचत करने के हर प्रयास करता है। भले ही किनने लोगों की उससे कहा-सुनी हो जाती है। उसे कोई मेहनत नामा नहीं मिलता, फिर भी वह सच्ची सेवा करता है। कारज में मेहनत नामा लेने वाले लोग अन्त में कठियाला तथा "घरवारी' के "द्रुब" लगाते हैं। अर्थात् "द्रुब" का एक तिनका उनकी पगड़ी पर लगाता है। -'द्रुब घास" को मंगलमय माना गया है। उन्हें भी वह रुपया-दो पुरस्कार के रूप में देता है और सब को खुश कर देता है। वह होने वाले अन्य उत्सवों में भी यही भूमिका निभाता है। घरवारी से मिला उत्तरदायित्व वह बड़ी ईमानदारी से निभाता हुआ समाज की प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ है।

●

# किल्बा का जागङ पर्व

जसबीर सिंह

देवभूमि किन्नौर में वर्ष भर कई पर्वों और मेलों को चिरकाल से ही बड़ी धूम-धाम से मनाने की परम्परा चली आ रही है। ऋतु के अनुसार विशेष तिथियों तथा महीनों में नाना-विध रहस्यमय विचित्र पर्वों को यहां के लोग प्राय: श्रद्धा उमंग एवम् उल्लास से मनाते रहते हैं। उख्याङ, बीश आदि त्योहारों की तरह एक बहुचर्चित मेला किल्बा गांव में लगता है—जागङ। अन्य पर्वों से अलग अस्तित्व लिए अपने किस्म का आप है।

'जागङ' शब्द का अर्थ शायद रात भर (जागरण) जागते रहने से है। लोक धारण के अनुसार यहां के ग्राम्य देवता 'श्री नारेनस' ने टापरी के पास छोलटू ढांक में रहने वाले एक खतरनाक नरभक्षी असुर 'जागङ राक्षस' के लगातार उत्पीड़न से प्रजा को बचाने के लिए उससे एक समझौता किया था। वह यह कि प्रतिवर्ष माघ मास के विशिष्ट प्रविष्टे की एक रात को निश्चित अवधि तक वह स्वेच्छा से जो चाहे उत्पात मचा सकता है परन्तु उसके बाद वर्ष भर बिल्कुल नहीं। दुष्ट-दैत्य ने शर्त मान ली और तब से इस पर्व की शुरूआत हुई।

'जागङ' मेला पांच दिनों तक लगता है किन्तु प्रथम रात्रि को लोगों को अग्नि-परीक्षा से गुजरना पड़ता है। राक्षस के गांव प्रवेश से लेकर उसके बहिर्गमन के तूफानी दौर तक (लगभग तीन घण्टे या कभी उससे अधिक) अत्यन्त सावधानी बरतनी पड़ती है।

इस दौरान लोग मकानों के दरवाज़े बन्द करके चुप-चाप सहमें-सहमें अन्दर रहते हैं। दबे स्वर से अथवा संकेतों से बातें

करते हैं। इस अवसर पर चावल, मांस, पूरियां तथा तरह-तरह के पकवान बनाने की प्रथा है।

इस भयानक रात्रि को स्थानीय लोग कर्मचारियों को भी आमन्त्रित करते हैं। लेकिन इस रात्रि को यदि कोई स्वजन भी द्वार खट-खटाए तो उसका भीतर प्रवेश निषिद्ध है।

देवालय में दीप-दान जैसे एक विशेष पात्र में पानी डाल कर सूक्ष्म छिद्र द्वारा टपकाया जाता है और जब टपकना बन्द हो जाए, तब तक की अवधि को 'गौरङ' कहा जाता है। इसी आधार पर भूत के आने और जाने का समय निर्धारित किया जाता है, जिसकी घोषणा देवता जी के कार-करिन्दे करते हैं।

लोग अपने-अपने घरों में छुपने से पहले योसारिंग (गांव का निचला क्षेत्र) वांगविष्ट के मकान के पास रास्ते में बकरे के सिर की हडिड्यां और पूरियां बिखेर आते हैं, ताकि राक्षस आते ही उन पर पिल पड़े और उसकी क्रोधाग्नि तनिक शान्त हो। यहां तक की उसकी लपलपाती खूनी जीभ की सन्तुष्टि के लिए घरों के सामने गली-गली डगर-डगर हडिड्यां, बुझे कोयले और कांटेदार झाड़ी (ब्रेकुली) की टहनियां बिखेर दी जाती हैं।

इस बीच पुरुष (प्रत्येक घर से एक-एक देवालय (प्रा) में एकत्र हो जाते हैं और विविध प्रकार के पकवान बना कर खाते-पीते रहते हैं। खुले आम बाहर घूमने की मनाही होती है। यदि किसी ने लघु-शंका के लिए जाना हो तो पुजारी का साथ होना भी अनिवार्य होता है।

तत्पश्चात् पुरूषों का दल 'जागङ-कोठी' (इस अवसर के लिए बना विशेष मन्दिर) की ओर प्रस्थान करता है, जहां आठ व्यक्ति पहले से ही कोयला बना रहे होते हैं। रास्ते में देवांगन के फाटक से निस्तब्ध रात्रि में पुजारी मद्धम स्वर से तीन बार वादक वृन्दों का आह्वान करता है। चौकन्ने वादक ढोल, नगाड़ा, शहनाई आदि अपने-अपने साजों को लेकर दबे पांव 'जागङ-कोठी' पर पहुंच जाते हैं।

फिर यकायक वाद्य-यन्त्रों की गूंज के मध्य देवता जी का रजत-स्वर्ण जटित भव्य रथ उठा लिया जाता है। माली (गरोक्च) में दैवी-शक्ति का संचार होता है और वह खेलने लग जाता है। फिर वह 'जागङ-कोठी' के भीतर बने चूल्हे से अंगारों को बार-बार हथेलियों मे भर, उस पर गोमूत्र, हडिड्यों फाफटे के चिल्टे (होटोव) और शराब डलवा कर देवता के दिशा-निर्देश पर फेंकता जाता है। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है, जब तक देवता जी के द्वारा भूत के तृप्त हो जाने का संकेत न मिले। दुर्भाग्यवश जिन-जिन लोगों पर भूत की कुदृष्टि पड़ी हो तो माली उन्हें सूचित करता है और बाद में खर्चा पूजा द्वारा देवता जी इसका निदान करते हैं। दैत्य के गांव छोडने की सूचना के प्रतीक वाद्य-यन्त्रों की आवाज़ सुन कर आतंकित लोगों की जान में जान आ जाती है। उस असुर के नाम पांच-पांच पूरियां प्रत्येक घर से चढ़ाई जाती हैं।

बस इसी के साथ शुरू हो जाता है प्रेम सौहार्द और उमंगों का त्योहार-जागङ। पारम्परिक पहरावों तथा नाना प्रकार के आभूषणों से अलंकृत महिलाएं, सजे संवरे पुरुष, आबाल, वृद्ध सभी देवांगन में एकत्रित होते हैं। नृत्य करते हैं दिन-रात। वादियों में 'जागङ-गीथङ' की स्वर लहरियां पांच दिनों तक अविराम गूंजती रहती हैं। जागङ का अपना विशेष लोक-गीत है, विस्तार भय से जिसका उल्लेख यहां नहीं किया जा रहा है।

लोकास्था है कि यह दानव किल्बा से कनाई सापनी तथा बटूरी गांव होता हुआ अपने ठिकाने पर छोल्टू लौट आता है। उस भयावह रात्रि को इन सभी गांवों में भी इसी प्रकार की रस्में अदा की जाती हैं।

●

# जागर उत्सव—एक मनोविश्लेषण

डॉ॰ अशोक जैरथ

कुमांऊ और उसके आस-पास के पहाड़ी अंचलों में ईश्वरीय प्रकोप, शारीरिक और पारिवारिक कलह से बचने और उपाय ढूढने के लिए एक विशेष अनुष्ठान का आयोजन किया जाता है जिसे जागर की संज्ञा दी जाती है। अनेक भरे-पूरे परिवार समाज अथवा गांव की खुशहाली के लिए जागर किया जाता है, तो कई समय यह प्रसन्नता और खुशी के समय में भी किया जाता है ताकि इस अवसर पर कोई कुदृष्टि न पड़े। वस्तुतः यह अनुष्ठान एक धार्मिक अनुष्ठान है जो सामाजिक कसौटी पर पूरा उतरता हैं।

अक्सर यह अनुष्ठान परम्परा-वादी ख़ासी डोम, तथा दूसरी तथा कथित निम्नजातियों में आयोजित किया जाता है। ढोल ढमाकों और देव आख्यानों द्वारा व्यक्ति विशेष में स्थानीय ईश्वरीय शक्ति का प्रवेश करवाया जाता है। यही व्यक्ति बाद में उस ईश्वरीय शक्ति का प्रतिरूप बनकर ईश्वरीय बोल बोलता है। जागर पूरे गांव की भलाई के लिए सामूहिक तौर पर भी मन्दिर में आयोजित किया जाता है। सामूहिक तौर पर आयोजित यह अनुष्ठान बड़े पैमाने पर होता है उसे बाहरी जागर कहते हैं। इस जागर में ग्राम देवताओं तथा उसके साथियों को जगाया जाता है। विशेष पर्व के अवसर पर या किसी बड़ी विपत्ति के समय इस का आयोजन किया जाता है।

जागर का मुख्य पात्र जगरिया होता है जो देवताओं को किसी व्यक्ति विशेष में जगाता है। एक सिद्धहस्त संगीत-कार

होता है जो लोकवाद्यों में ढोल, थाली, हुड़के आदि संगीत यंत्रों के माध्यम से अपना काम करता है। यह सामूहिक जागर कई दिनों तक चलता है। बाईसी या बैसी नाम से किये जाने वाला अनुष्ठान बाईस दिनों तक चलता है, जब हर रात को जागर होता हैं और बकरे तथा भैंसों का बलिदान होता है पर बीच में सूतक और बच्चे के जन्म से कई बार छूत के डर से इसे अठारह दिन तक ही किया जाता है पर सम्पूर्ण मान लिया जाता है। अक्सर इस अनुष्ठान का आयोजन सावन माह में होता है। इस बड़े अनुष्ठान का आयोजन लोक देवताओं के देव स्थलों पर किया जाता है। डंगरिया जो इस अनुष्ठान का केन्द्रीय पात्र होता है। जिसमें देवात्मा प्रवेश करती है, पूरे अनुष्ठान के दौरान सात्विक आहार करता है। उसे केवल एक बार भोजन करना होता है, दो बार दिन में स्नान करना होता है और देव स्थल पर निरंतर वन्दना करनी होती है। पूजा के समय अथवा ध्यान के समय पूरे गांव को शान्त रहने के लिए कहा जाता है, यह लगभग निर्धारित समय पर होता है। इस तरह पूरा गांव ही मानों इस ध्यान में अपना योगदान देता है। इस दौरान उस मन्दिर में अखण्ड ज्योति जलती रहती है। अक्सर इस आयोजन के दौरान जागर से पहले रात्रि को झेड़ा लोक नृत्य का आयोजन रहता है। जागर के लिए डंगरिया उचित स्वच्छ धोती पहन कर और स्वच्छ मन से एक चौकी पर अपना आसन ग्रहण करता है। देव आख्यान गाने वालों का स्वर धीरे-धीरे उठने लगता है और चरम सीमा पर पहुंचना शुरू हो जाता है। डंगरिये ध्यान मग्न होकर इन आख्यानों को सुनते रहते हैं। चरम सीमा में पहुंचते स्वरों के साथ ही इनका शरीर कांपने लगता है। उनके मुख से कई प्रकार की आवाजें निकलनी शुरू हो जाती हैं। इन्हें हाक कहते हैं। सारा वातावरण उत्तेजना से भर उठता है। डंगरिये उठ कर नाचने लगते हैं तथा अनेक अति मानवीय शक्तियों को प्रदर्शित करते हैं। जैसे तपे हुए चिमटे को मुंह में रख लेना चाबुक से अपने आप को पीट लेना आदि। धीरे-धीरे सब शान्त हो जाता है। इस जागर के अन्तिम दिन लोग अपनी मनोकामना के लिए प्रश्न पूछते हैं और बड़ा डंगरिया

नाचते-नाचते फल देता है। जिसकी झोली में यह फल गिरता है उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है ऐसा विश्वास है।

इन अनुष्ठानों से थोड़ा अलग वैयक्तिक जागर होते हैं, जो पारिवारिक आवश्कताओं की पूर्ति के लिए आयोजित किए जाते है। ये जागर पारिवारिक देव की प्रशंसा, पूजा और बखान में रखे जाते हैं। पारिवारिक जागर अक्सर दुरात्माओं को भगाने, पुत्र प्राप्ति के बाईसवें दिन पर, नयी दुल्हन के घर आगमन पर तथा कई बार कई परिवार अपने ईष्ट देव की अर्चना में हर वर्ष इसे आयोजित करते हैं।

जागरिया में निम्न पात्र मुख्य भूमिका अदा करते हैं।

स्योक :- जो जागर लगाते है अर्थात् मेज़बान।

जगरिया :- जो गाता है ढोल बजाता है और सारे अनुष्ठान को गति देता है।

डंगरिया :- जिसमें देव आत्मा प्रवेश करती है और जो बाद में देववाणी का अह्वान करता में।

हेबार :- जो देव आख्यान गाने में जगरिया का साथ देता है। थाली और हुड़का बजाने वाले।

प्रश्नकर्त्ता :- प्रश्न पूछने वाले पारिवारिक सदस्य अथवा दर्शक

श्रोतागण :- जगरिया जागर के विशेषज्ञ माने जाते हैं जो दुरात्माओं को भगाते हैं, जो पवित्र बोलो को स्मरण करते हैं और हर पल दुरात्माओं को अपने अनुशासन में रखते हैं तथा उन्हें घर छोड़ने के लिए बाध्य करते हैं। प्रकोष्ठ में पवित्र जल छिड़कने के बाद गाय का मूत्र छिड़का जाता है धूप और अगरबत्ती जलाई जाती और धूनी रमायी जाती है। डंगरिया की चौकी को रखा जाता है। यह सब जगरिया के संकेत पर होता है। वस्तुतः जगरिया गूरु गोरख नाथ के प्रतिनिधि के तौर पर कार्य भार संभालता है।

डंगरिये को देवता का घोड़ा कहा जाता है क्योंकि डंगरिया के माध्यम से ही देवता का सम्पर्क जन साधारण से होता है।

देवता डंगरिया के माध्यम से ही उपस्थित लोगों से बोलता है। अतः उस दौरान डंगरिये को भी देव का सम्मान मिलता है। अक्सर एक गांव में कई डंगरिये होते हैं, जो इस कार्य को करते हैं। कई बार स्त्रियां भी यह कार्य करती हैं पर अक्सर स्त्रियों को बाहरी जागरों में नहीं बुलाया जाता। उन्हें गुरु गोरखनाथ की धूनी से दूर रखा जाता है। जगरिया ही अक्सर डंगरिये का चुनाव करता है। डंगरिये को दस रुपये से लेकर अपनी इच्छानुसार घर वाले प्रसाद के रूप में देते है। कई बार डंगरिया दो लोक देवताओं की आत्माओं का आह्वान कर सकता है। कुछ ऐसे भी देव माध्यम होते हैं जो आर्जी तौर पर यह कार्य करते हैं और अभी सीखने की स्थिति में होते हैं। इन्हें कच्चा डंगरिया भी कहा जाता है। लड़की शादी-शुदा हो और शिल्पकार भी ऐसी स्थिति में ही डंगरिया बन सकती है पर राजपूत लड़का उपनयन संस्कार के बाद इस प्रक्रिया में से गुजर सकता है, लेकिन इन सब का जीवन सात्विक और पवित्र होना चाहिए।

जागर आत्मा के जागरूप की बात करता है। व्यक्ति जो जागता है वह अपने कर्म द्वारा ईश्वरीय शक्ति को प्राप्त करता है। वस्तुतः वह व्यक्ति दर्शकों के साथ साधारणीकरण स्थापित करता हुआ संगीत की लय और ढोलक की थाप पर इहलोक से विस्मृत होकर आत्मलोक की ओर उन्मुख हो जाता है, पर जागर व्यक्ति अथवा समाज से हटकर क्रियान्वित नहीं किया जाता।

जगरिया बड़े देवी देवताओं जैसे-शिव विष्णु आदि का आह्वान कर पाने में असमर्थ होते हैं। उनके अनुसार बड़े देवता पंडित लोगों का कहना मानते हैं वे बड़े शक्तिशाली होते हैं वस्तुत : बड़े देवताओं के पास उनकी बातों, उनकी समस्याओं के लिए समय नहीं। उन्हें बड़े-बड़े काम होते हैं अतः उन्होंने यह कार्य छोटे देव-देवताओं, ग्राम-देवों, लोक देवों तथा पारिवारिक देवों-होरू, सेम, गंगनाथ, गोलू आदि पर छोड़ा है। स्थानीय देव ही इस प्रक्रिया के स्रोत होते हैं। जगरिया गरीब और

कम पढ़ा लिखा आदमी होता है। वह जागरी होने में प्रतिभा सम्पन्न होता है। जरुरी नहीं वे संस्कृत पढ़े हो पर ग्राम देवता के पास जाने की शक्ति उन में होती है। जगरिया देवात्मा को आमंत्रित करता है और बाद में उसे अनुशासित करता है देव जगरिया के माध्यम से प्रश्नकर्त्ताओं के उत्तर देते हैं। जगरिया बड़ीजात के लोगों के लिए बहुत छोटा है, पर वस्तुतः बहुत बड़ा है। रुपये पैसे को बहुत निम्न समझता है पर इस के उल्ट ध्यान व शारीरिक और मन की पवित्रता में उस का अजस्र बिश्वास होता है इसीलिए वह अपने लोगों में उच्च स्थान पाता है। दूसरी ओर डंगरिया को स्वच्छता और पवित्रता के उच्चसोपान तय करने होते हैं क्योंकि देवता उसमें प्रवेश करते हैं चूंकि ब्राह्मण आगे ही पवित्र समझे जाते हैं पर उन तक इन लोगों की पहुंच बहुत कठिन है अतः उनके समानांतर अपने आपको ढालने के लिए ये लोग कठिन साधना करते हैं। पवित्रता अति अनिवार्य शस्त्र है। कच्चा डंगरिया नृत्य करता है पूरी प्रक्रिया में भाग लेता है पर केन्द्रीय देव-स्थान पर नहीं आ सकता। हेबार संगीत से जगरिया का साथ देते हैं और प्रश्न को शंका कहा जाता है। घरों में जागर किसी व्यक्ति विशेष के लिए होता है जिसे बाहरी आत्मा ने ग्रसा हो, स्त्रियों विशेषकर युवाओं में यह शिकायत अधिक रहती है।

श्मशान स्थानों पर नारियों का अक्सर जाना होता है तो बाहरी छायाएं उन्हें ग्रस लेती हैं। इन दुरात्माओं को भगाने के लिए जागर किये जाते। डंगरिया के माध्यम से ईष्ट देव बोलतें हैं और इस दुरात्मा को भगाने का उपाय बताते हैं। कई बार उस दुरात्मा के कहे अनुसार मुर्गा, चावल, फल आदि किसी विशेष स्थान पर पहुंचाना होता है। प्रेत की आकृति आटे से बनाई जाती है तथा श्मशान में जाकर चूडियां कड़े और दूसरी वस्तुएं रख दी जाती हैं।

वस्तुतः इन अनुष्ठानों के पीछे सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता है। प्रश्न यह है कि प्रेतात्मा अधिकांश नारियों को विशेष कर युवा नारियों को ही क्यों पकड़ती है। इसका

उत्तर देते हुए, प्रो० फंगर (पेनिनसिलवेनिया विश्व विद्यालय) कहते हैं कि वस्तुतः शादी के बाद युवा नारियों को दूसरे गांव के तिहायत अजनबी वातावरण में जाना होता है-घर समाज के कठिन कार्य करने होते हैं। कई बार वह बिल्कुल अजनबी और अकेली पड़ जाती हैं। उसे पता है कि न ही पीहर वाले और न ही सामाजिक घटक, उसे कोई सहारा दे पायेंगे, अतः वह अवश सी चीत्कार उठती है जिसे प्रेत आना समझ लिया जाता है। कुछ दिनों का अन्तराल उसके मनोमस्तिष्क के शैथिल्य और मलाल को बहा ले जाता है। वह अनुष्ठान के समय अपने को केन्द्रीय पात्र पाकर संतुष्ट हो जाती हैं और इस प्रकार ठीक हो जाती है। जिसे प्रेत का चला जाना कहते है पर सभी प्रक्रिया में केवल कार्य भार की अधिकता और अजबनीयत के अहसास को ही कारण नहीं लिया जाता है। हम जानते हैं कि पीहर में भी लड़कियां खूब काम करती हैं पर वह उनका अपना घर होता है। ससुराल में इन्हें मात्र एक सम्बल पति का होता है—यदि उसकी ओर से भी सान्त्वना और सन्तुष्टि नहीं मिले तो लड़की का असहज हो जाना स्वाभाविक है। "सैक्स" भी इस प्रक्रिया में बहुत बड़ा रोल अदा करता है। जब नारी सन्तुष्ट नहीं हो पाती है या अतिक्लिष्ट प्रहारों से थक जाती हैं तो सहायता के लिए किसी को भी न पुकारने की घुटन उसे घुटती रहती है जो कभी चित्कार का रूप धारण कर लेती है। जिसे प्रेत आना कहा जाता है। किन्तु इसके बावजूद भी जागर इस समस्या का निदान करते हैं। कम से कम थोड़े समय के लिए उन्हें ऐसा ही लगता है।

जम्मू और हिमाचल के कुछ हिस्सों में जागरना और जड़ियां खेलना दो संज्ञाएं दो विभिन्न प्रक्रियाओं को दी जाती हैं। जागरना में देव को जगाया जाता है और जिसमें देवता प्रवेश करता है वह कांपता है नाचता है और अनर्गल बोल बोलता है। भद्रवाह में वासुकी नाग की कपलाश यात्रा के दौरान ऐसे दृश्य देखे जा सकते हैं, जिसमें देवता प्रवेश करता है उसे चेला कहा जाता है। उनसे अपनी शंकाएं प्रस्तुत

की जाती है। और उत्तर पाए जाते हैं। कई बार उत्तर नहीं भी मिल पाते हैं इसी प्रकार कुल्लू मनाली, मनीकरण के इलाकों में देवता का प्रवेश जागर के समय होता है। जब ग्राम देवता एक स्थान से दूसरे स्थानों की ओर यात्रा करते हैं।

श्री के. एम. गोपालन की अराध्य गणेश्वरी की धातू मूर्ति

# भूमि विवादों की निर्णायक-मां जयईश्वरी

लायक राम शर्मा

आज के वैज्ञानिक युग में जहां चंहुमुखी प्रगति ने हमारे जीवन को सुखद बनाया है वहां संस्कृति के पाश्चात्यकरण के साथ-साथ हम अपनी परम्पराओं को भूलते जा रहे हैं। आस्तिक व्यक्तियों को कुछ लोग रूढ़िवादी की संज्ञा देते हैं, किन्तु आज भी देव भूमि हिमाचल में देवी-देवतों द्वारा किसी मामले में दिये गये निर्णय को सर्वोपरि व अन्तिम मानकर उसका पालन करना लोग अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। यह हमारी देवी-देवताओं के प्रति अगाध श्रद्धा का प्रतीक ही है कि न्यायालयों के कानूनी दांव पेचों के चक्कर में न पड़ कर आज भी भूमि सम्बन्धी विवादों का निर्णय दैवाज्ञा से होता है।

शिमला से 35 किलो मीटर की दूरी पर टियाली स्थित "श्री जयईश्वरी देवी काली माता दलैंया" का मन्दिर आज भी इस क्षेत्र का सर्वोच्च न्यायालय कहलाता है। जब कोई व्यक्ति अपने भूमि सीमा सम्बन्धी या अन्य भूमि विवाद की शिकायत लेकर मन्दिर के प्रांगण में पहुंचता है तो मां से शिकायत करने से पूर्व एक बार स्वतः ही उसके रोम-रोम में बिजली की लहर सी दौडती है। शिकायत कर्त्ता कारदारों (मन्दिर के कर्मचारियों) के माध्यम से देवी मां से अनुनय विनय करता है तथा देवी मां गुरू या चेला (जिसे स्थानीय भाषा में देवां कहते हैं) के माध्यम से उसे न्याय प्रदान करने का विश्वास दिलाती है। उस समय देवी मां की ओर से वह एक आदेश का पालन करने पर बाध्य होता है, वह यह कि शिकायत की तिथि से निर्णय की तिथि तक शिकायत कर्त्ता व उसके परिवार के अन्य सदस्य

दूसरे पक्ष के किसी भी परिवार के सदस्य के हाथ का छुआ पानी ग्रहण नहीं करते, जिसे 'खणोट' या 'खान्द' कहते हैं।

खणोट या खान्द की यह स्थिति इसलिए आवश्यक है कि देवी के विधानानुसार जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध मां के पास शिकायत करता है तो निर्णय होने तक दोनों का आपसी सम्पर्क नहीं होना चाहिए तथा दोनों पक्षों को एक दूसरे से दूर रखने का यही एक मात्र उपाय है।

सर्व प्रथम कारदारों का एक दल देवी मां के दूतों के रूप में दोनों पक्षों के मध्य बातचीत द्वारा समस्या को हल करने का प्रयत्न करता है जिसे स्थानीय भाषा में 'पांची' कहा जाता है, (पांची पन्च शब्द से बना है) यदि दोनों पक्षों के मध्य समझौता वार्ता विफल रहती है तो शिकायत कर्ता उस दिन की प्रतीक्षा में रहता है। जब देवी मां की पालकी या रथ (जिसे स्थानीय भाषा में 'ज़माण' कहा जाता है) उसके गांव में आती है। प्रथम पक्ष (शिकायत कर्ता) दोनों हाथ जोड़ कर पालकी के आगे नतमस्तक अनुनय विनय करता है तथा अब निर्णय की घड़ी आती है। सैंकड़ों पुरुष-नारी, बाल-वृद्धों की उपस्थिति में (ज़माण) पालकी में एक विशेष प्रकार की हरकत होती है तथा पालकी का छत्र हिलने लगता है व इसे कन्धे पर उठाने वाले दोनों व्यक्तियों के पग डगमगाने लगते हैं। सहसा पालकी उठाने वालों के पग विवाद ग्रस्त भूमि की ओर तेजी से बढ़ते हैं उनके पीछे-पीछे सारा जन समूह दौड़ता है, पालकी उठाने वाले बहुत यत्न करने पर भी अपने आप को नहीं रोक पाते। यदि कोई व्यक्ति पालकी उठाने वाले व्यक्तियों की सत्यनिष्ठा पर संदेह करे तो उनके स्थान पर (जमाण) पालकी उठाने को आगे बढ़ता है तथा तब उसे पालकी उठाने पर यह आभास होता है कि वह दो क्विंटल का बोझ उठाये हुए है, जब कि पालकी का अनुमानित वज़न 35 से 40 किलो तक ही होता है।

अब पालकी 'जमाण' विवाद ग्रस्त भूमि पर पहुंच कर वास्तविक सीमा से होते हुए आगे बढ़ती है तथा पालकी के पीछे कारदार या गांव का वयोवृद्ध व्यक्ति भूमि पर निशान लगाता है और इस प्रकार देवाज्ञा से सीमा विवाद समाप्त हो जाता है

सीमा निर्धारण का यह कार्य इतना शुद्ध रूप से होता है कि कहीं फुटों का भी अन्तर नहीं होता। यहां एक बात उल्लेखनीय है कि पालकी उठाने वाले व्यक्ति प्राय: दूसरे गांव से सम्बन्धित होते हैं तथा उन्हें उस गांव की भूमि सीमाओं का कोई भी ज्ञान नहीं होता। इस निर्णय को दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं ऐसा न करने पर देव आज्ञा का उल्लघंन करने वाले को देवी के कोप भाजन का पात्र बनना पड़ता है। अब प्रथम पक्ष या द्वितीय पक्ष को जो भी दोषी हो, अपने अपराध की स्वीकारोक्ति करके विवाद ग्रस्त भूमि को दूसरे पक्ष के लिए छोड़ देता है।

इसी प्रकार अन्य भूमि सम्बन्धी विवादों का निर्णय धार्मिक उत्सवों व अनुष्ठानों पर भी किया जाता है। जहां जन समूह के समक्ष खुली अदालत के रूप में गुरु (देवां) व कारदारों के माध्यम से देवी मां के आदेशानुसार भूमि विवाद निपटाये जाते हैं। देवी मां के निर्णय को मान लेने के पश्चात् दोनों पक्ष 50-50 पैसे एकत्र करके 1 रु. (सामूहिक रूप में) देवी मां के चरणों में भेंट चढ़ाते है जिसे 'बोल' या 'आखर' कहते हैं, जो दोनों की आपसी एकता का प्रतीक होता है कुछ लोग इस एकता के अवसर पर मिलकर देवी मां को बकरे की बलि भेंट करते है। बोल या आखर भेंट करने के पश्चात् 'खणोट' की स्थिति समाप्त हो जाती है तथा दोनों पक्षों का एक दूसरे के घर आना जाना पूर्ववत हो जाता है।

आज भी इस क्षेत्र के केवल 1 या 2 प्रतिशत भूमि विवाद न्यायालयों में जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति न्यायालय में ही निर्णय करवाना चाहता है तो उसे पहले जयईश्वरी मां से अनुमति लेनी पड़ती, बिना अनुमति लिए न्यायालय में जाने वाले व्यक्ति की हार होती है। इस प्रकार देव कोप के भय से आज भी यहां आपसी एकता व भाईचारा बना हुआ है तथा जनसाधारण मां के आशीर्वाद से आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहा है।

इसके साथ लगे क्षेत्रों में देवी धरेच, देवता सोगु बरवोग, देवता कलौहर ग्रेन्ज व मंगलेश्वर महाराज बलग भी अपने-अपने क्षेत्रों के भूमि विवाद इसी तरह से सुलझाते हैं। सचमुच ही यह निष्पक्ष एवं सस्ती न्याय प्रणाली एक उच्च आदर्श है। ●

# सिरमौर की लोक कथा ''भूरशिंग देवता'' व कांगड़ा की लोकगाथा ''कढ़ी'' का समाज शास्त्रीय अध्ययन

**धनी राम पालमपुरी**

कांगड़ा हिमाचल प्रदेश के उत्तर में धौलाधार की पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य स्थित है। हिमाचल का यह विशाल भू-भाग गौरवपूर्ण स्थल है। इस क्षेत्र के उत्तर में धौलाधार की पहाड़ियां सनातन हिम से आच्छादित रहती हैं। धौलाधार की गोद में फलता-फूलता, खिल-खिलाता हुआ यह विशाल भू-भाग अनायास ही मन को मोह लेता है। इसी धवलगिरी के प्रांगण में श्रृंखलायें एवं उपत्थकायें हैं। इस क्षेत्र के दक्षिण में शिवालिक श्रृंखलायें अट्टालिकाओं के कंगूरों के समान उभरती खड़ी है। कांगड़ा एक ऐतिहासिक जिला है जिसे कई नामों (जालन्धर, त्रिगर्त, सुशर्मपुर, कटोच, कानगढ़) से जाना जाता है। महाभारत के समय में सुशर्म चन्द्र राजा ने इस पर शासन किया था। भूमि चन्द्र कटोच कांगड़ा का प्रथम शासक रहा है। बाद में महमूद गजनवी ने कांगड़ा के अपार धन को खूब लूटा। कांगड़ा का शासन मुगलों के आक्रमणों को झेलता 17वीं शताब्दी के अन्त में महाराजा संसार चन्द द्वितीय की देख-रेख में रहा। सिक्खों के युद्धों को समेटता, अंग्रेजी शासन काल की निर्दयता के प्रहारों को झेलता पंजाब से मिलकर टूटता हुआ अन्ततः हिमाचल प्रदेश का एक जिला बन गया।

जिला सिरमौर शिवालिक पर्वत श्रृंखलाओं और धारटी धार से घिरा, गिरि नदी के आस-पास बसा एक सुन्दर स्थल है।

जिला सिरमौर भी कांगड़ा की भान्ति एक ऐतिहासिक स्थान रहा है। इसे 7वीं शताब्दी में राठौर अदीत ने बसाया था। "सिरमौर ताल" जो इस जिले की प्राचीन राजधानी थी, 12वीं शताब्दी में गिरि नदी के बहाव में आकर खत्म हो गयी। बाद में इसी स्थान पर उग्र चन्द्र राजा तथा उसके परिवार ने कई वर्षों तक राज्य किया। आज जिला कांगड़ा और सिरमौर का सामजिक, सांस्कृतिक, एवं धार्मिक क्षेत्रों में आपसी आदान-प्रदान का सिलसिला बना हुआ है। साहित्यिक गतिविधियों में दोनों जिले प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं। लोक जीवन में लोक कथाओं-गाथाओं का विशेष स्थान रहा है। लोककथाओं की परम्परा बहुत प्राचीन है। ये ऋग्वेद, वैदिक काल, उपनिषद, वृहतकथा, पंचक्ता हितोपदेश, वैताल पंचत्रिशतिका, बौद्ध और जैन साहित्य से होती हुई आधुनिक युग में हिन्दी में लोक कथा तक की यात्रा को पहुंची है। हिमाचल में बहुत सी ऐसी लोक-कथायें हैं जो सामाजिक तौर पर एक जिले से दूसरे जिले को बांध देती हैं। ऐसी ही समाज के चित्रण को प्रस्तुत करने वाली सिरमौर की लोक कथा "भूरशिग देवता" तथा कांगड़ा की 'लोकगाथा कढ़ी' है। इन दोनों कथाओं का मूल स्वर प्रेम और त्याग रहा है। भले ही कांगड़ा की लोक गाथा 'कढ़ी' को ढोलरू प्रथा में गा कर ही सन्तोष कर लिया जाता हो तो भी इसकी कथा सिरमौर की लोक कथा भूरशिग से पूर्णतयः मेल खाती है। अन्तर केवल इतना है कि भूरशिग की बहिन को एक देवी का स्थान मिल जाता है जबकि पंजालों की बहिन 'कढ़ी' कांगड़ा के लोगों के मन के मन्दिर में निवास करती है। इन दोनों का समाज शास्त्रीय अध्ययन करने से पहले इनके कथानक पर दृष्टि डालनी उचित होगी। सिरमौर में प्रचलित 'भूरशिग देवता' लोक-कथा का कथानक इस प्रकार से है। सिरमौर के गांव "सराहन" के निकट "पंजरेली" में एक किसान परिवार रहता था। उसकी दो सन्तानें थीं, एक लड़का और लड़की। अचानक किसान की पत्नी चल बसी। किसान को परिवार चलाने के लिए दूसरी शादी करनी पड़ी। सौतेली मां ने आते ही उन नन्हें बच्चों पर कहर ढाने शुरू कर दिये। एक दिन बालक गाय चराने गया था कि अचानक वर्षा और तूफान के कारण गाय का बछड़ा

कहीं खो गया। सौतेली मां ने भूरशिग को उसी वक्त वापिस जंगल में भेज दिया। बहिन को भाई का रात के समय जंगल भेज देना अच्छा न लगा, पर बेचारी कर भी क्या सकती थी। अगली सुबह जब उसका पिता भूरशिंग को ढूंढ़ने निकला तो उसकी लाश एक वृक्ष के नीचे सिकुड़ी पड़ी थी। बेचारा ठण्ड के कारण मर गया था। पास ही बछड़ा भी मरा हुआ था। पिता पुत्र की मृत्यु देख कर दंग रह गया। भाई की मृत्यु के बाद बहिन पर तो जैसे विपदाओं का पहाड़ ही टूट पडा। बेटे को मार कर जब उसकी सौतेली मां को शान्ति न मिली तो कुछ ही वर्षो बाद उसने लड़की की शादी एक बूढ़े से तय करा दी। आखिर एक दिन उसकी बारात आ गई। वापसी पर उसका डोला उसी जंगल से गुजरा जहां उसके प्रिय भाई का दारूण अंत हुआ था। उसने डोली रुकवाई और बड़े प्रेम सहित अपने दिवंगत भाई की मौत के स्थान पर श्रद्धा सुमन चढ़ायें और पुनः डोली में बैठ गई। एक ऊंचे स्थान पर पहुंचते ही उसने अचानक डोले से कूद कर अपने प्राण त्याग दिये। इस प्रकार उसने अपने भाई के प्रेम में अपने प्राणों का बलिदान कर दिया।

**कांगड़ा में प्रचलित "कढ़ी" लोकगाथा का कथानक :**

कढ़ी पंजाले गांव के एक किसान की बेटी थी। बचपन से ही चंचल तथा दयावान थी। छोटी उम्र में ही उसकी भी शादी हो गई। उसका ससुराल काफी धनाढ़य। सोने-चांदी के गहनों से कढ़ी के अंगों को भर दिया गया। वह अपने ससुराल खुश न थी। उसकी सास बहुत सख्त थी। बड़ी सुबह उठ कर झाडू बगैरा करना पड़ता था। पानी भी काफी दूर से लाना पड़ता था। एक दिन बड़े सवेरे ही उसकी सास ने उसे उठाया और पानी लाने भेज दिया। जब वह घड़ोलू ले कर पानी भरने गई तो उसने देखा कि एक आदमी बावड़ी के किनारे निराश सा बैठा हुआ था। इस युवक को देख कर उसे अपने मायके तथा भाई की याद आती है। जब वह बावड़ी के पास पहुंचती है तो वह निराश युवक उसके गांव का ही होता है। यह देख उसे बड़ी खुशी होती है। वह उससे पूछती है कि भाई

तुम उदास क्यों हो ? वह कहता है बहिन मुझे रास्ते में लुटेरों ने लूट लिया है। मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। यह सुन वह अपने गांव के रिश्ते के भाई से गले लग गई और अपना नौलक्खा हार उसके गले में डाल कर वापस मुड़ आई। यह जानते हुए कि उसकी सास जीना हराम कर देगी, एक बहिन ने अपने मायके के युवक को भाई मान कर उसके दुःख को मिटाने के लिये इतना बड़ा अपराध करना स्वीकार कर लिया। जब उसकी सास को पता चला तो उसने उस पर कई जुल्म ढाये पर वह केवल यह ही कहती रही कि नौलक्खा हार कुएं में गिर गया है। उसके पति को घर बुलवाया गया। कुएं के पानी डोबे बुला कर सुखाया गया पर हार कहां मिलता। ससुराल के जुल्मों सितम से कढ़ी को अपनी जान गंवानी पड़ी, लेकिन उसने अपने भाई के दुःख को अपना दुःख समझते हुये राज को राज़ ही रहने दिया।

दोनों कथाओं के अध्ययन से अतीत काल के समाज की झांकी सामने आती है। भूरशिंग देवता में सिरमौर की प्राचीन पारिवारिक स्थिति तथा सामाजिक दशा का चित्रण स्पष्ट हो जाता है। सौतेली माता का व्यवहार तथा उससे उत्पन्न समस्या अति प्राचीनकाल से चली आ रही है। बहिन का अपने भाई के प्रति स्नेह भी शताब्दियों से कई कहानियों, लोक-कथाओं के माध्यम से उजागर होता चला आ रहा है।

सिरमौर के प्राचीन समाज की कथा को आधुनिक समाज ने भाई-बहिन के सहज़ प्यार और बलिदान को एक यादगार बना दिया। आज का सिरमौरी समाज इन दोनों भाई-बहनों को "देवता" और "देवी" के रूप में पूजता है। "पंजेरली" गांव की ऊंची चोटी पर भूरशिंग का मन्दिर बनाया गया है। इस पूरे पहाड़ का नाम "भूरिशिंग विल्ला" पड़ गया है। इसी गांव में उसकी बहिन का पवित्र मन्दिर भी बनाया गया है। आज भूरिशिंग सिरमौरी जनपद का एक प्रसिद्ध देवता है। इसे "दूधाधारी" देवता के नाम से पूजा जाता है।

दूसरी ओर "कढ़ी" लोक गाथा में कांगड़ा के प्राचीन समाज के दर्शन होते हैं। कम उम्र में लड़की की शादी इत्यादि की प्रथा के प्रचलन का भी पता भी चलता है। चोर-उच्चकों की वारदातें उस समय के समाज की मूल समस्या रही हैं। सास-बहू के तीखे सम्बन्धों की रूपरेखा भी उस समय के कांगड़ी समाज में मिलती हैं। भाई-बहिन का प्रगाढ़ प्रेम और बलिदान की भावना कांगड़ी समाज का एक दूसरा सुथरा पहलू भी रहा है। जहां सिरमौरी आधुनिक समाज ने भूरिशिंग को देवता का स्थान दे दिया। वहीं नये कांगड़ी समाज ने भी कढ़ी के प्यार और बलिदान को एक गाथा का रूप दे कर हमेशा-हमेशा के लिये अमर बना दिया है। कांगड़ा में "ढोलरू" प्रथा के अन्तर्गत डोम जाति के लोग घर-घर इस गाथा को सुना कर लोगों को बहिन के द्वारा एक भाई के लिये किये त्याग की गाथा सुनाते हैं।

सिरमौरी लोक कथा "भूरिशिंग देवता" तथा कांगड़ी लोकगाथा "कढ़ी" के अध्ययन व विश्लेषण से समाज में प्रेम और बलिदान के महत्त्व का पता चलता है। इन दोनों लोक कथाओं में समाज में व्यापक अनेक बुराईयों का भी सहज एवं स्वाभाविक रूप में वर्णन हुआ है।

अन्त में कहा जा सकता है कि इन दोनों कथाओं का मूल उद्देश्य समाज का चित्रण करना ही रहा है। सिरमौरी और कांगड़ी समाज में मानव व्यवहार के अच्छे और बुरे दोनों पक्ष समान रूप में मिलते हैं। अच्छाई और बुराई एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिये समाज में उचित व अनुचित का होना स्वाभाविक ही है। हर समाज में कुछ अच्छाईयां और बुराईयां व्यापत रहती हैं और इन्हीं का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने में यह दोनों लोक-कथायें सक्षम रहीं हैं।

●

यात्रा संस्मरण

# चूड़ेश्वर श्रीगुल

डॉ० सतीश कुमार शर्मा

हिमाचल प्रदेश देवताओं की भूमि है। 'देव' एक ऐसा तत्व है जिससे हर संस्कृति प्रभावित होती है। हमारा साहित्य और संस्कृति देव-कृपा तथा दैवी-प्रकोपों से प्रभावित रहे हैं। कभी-कभी यह भ्रम होने लगता है कि देवताओं का मानवीकरण हो गया है। फिर यह निर्णय करना भी कठिन हो जाता हैं कि देवताओं का मानवीकरण हुआ है अथवा मानवों का दैवीकरण। घर में किसी प्रकार का कोई भी प्रकोप होने पर धर्मपरायण परिवार के सदस्य देवताओं के पास जाते हैं। परिवार का मुख्य सदस्य देवता से अनजाने में हुई भूल-चूक अथवा अपने द्वारा हुई अवहेलना का पता लगाता है। वह भविष्य में सावधान रहने की प्रतिज्ञा करता हुआ पश्चाताप करता है। वह हर प्रकार के प्रायश्चित के लिए तैयार रहता है। देवता द्वारा बताई गई भूल का विधिवत् प्रायाश्चित करता है। कुछ स्थलों पर यहां तक देखने को मिलता है कि चारों ओर से निराश व्यक्ति तुरन्त राहत अनुभव कर रहा है। हिमाचल में हर ग्राम और कुल का देव भिन्न हैं।

हिमाचल के कई स्थानीय देवता पूरे प्रदेश को प्रभावित कर रहें हैं चूड़धार पर स्थित "श्रीगुल" उनमें से एक है। यह केवल हिमाचल प्रदेश पर ही नहीं अपितु साथ लगने वाले अन्य प्रदेशों पर भी अपना प्रभाव रखता है। ऊपरी-शिमला तथा सिरमौर जिलों का तो यह शीर्ष स्थानीय देवता है।

हिमाचल में बहुत सी चोटियां हैं जो आज भी "समाधिस्थ ऋषि" का आभास देती हैं। इन चोटियों पर शिवलिङ्ग विग्रह

माना जाता है। ऐसे पर्वत शिखरों में चूड़धार का महत्त्व पूर्ण स्थान है। इस शिखर की ऊंचाई 12000 फुट से अधिक है। शिमला जिला की तहसील चौपाल में स्थित इस पर्वत शिखर की की मान्यता बहुत अधिक है। बसन्त और ग्रीष्म ऋतु में यहां हजारों की संख्या में यात्री आते हैं। अन्य ऋतुओं में यहां की यात्रा कष्टपूर्ण हो जाती है। वर्षा-ऋतु में यहां मार्ग में वनस्पतियों की गन्ध से कई विकार आ सकते हैं। शीतऋतु में हिमपात हो जाता है।

शिमला से प्रातः 10-30 बजे चौपाल के सरांह नामक स्थान को सीधी बस सेवा उपलब्ध है। यह बस-सेवा ठियोग छैला, चौपाल होती हुई सायं 7 बजे सरांह नामक स्थान पर पहुंचती है। सरांह में 'बीजट' नामक देवता का मन्दिर है। यात्रियों को ठहरने क लिए इस देवता की एक धर्मशाला है। यहां पुजारी को मिलना होता है। यहां कमरा, बिस्तर एवं भोजन की व्यवस्था है। देवता के भण्डार से खाद्य-सामग्री उपलब्ध होती है। धर्मशाला में अधिक भीड़ होने पर भोजन स्वयं बनाना होता है। यह स्थल इतना रमणीक है कि मनुष्य कष्टों को भूल जाता है। यहां वन विभाग का विश्राम-गृह भी है। देवता की धनराशि से आधुनिक ढंग की धर्मशाला निर्माणाधीन है। इसके बन जाने पर यात्रियों की असुविधा दूर हो सकेगी। एक छोटा सा बाजार है जहां आवश्यक वस्तुओं को खरीदा जा सकता है।

सरांह स्थित बीजट देवता के विषय में कहा जाता है कि यह श्री गुल से सम्बन्धित है। यह आर्थिक दृष्टि से भी समृद्ध देवता है। बीजट की छड़ी इसके कर्मचारियों द्वारा शिमला, सिरमौर तथा सोलन के क्षेत्रों में घूमती है। इससे प्राप्त होने वाली आय से देवता का भण्डार चलता है। प्रातः छः बजे से सांयं सात बजे तक बीजट के दर्शन हो सकते। यहां भैंस के दूध से निर्मित पदार्थों का प्रसाद नहीं चढ़ता है। भवन की चौथी मञ्जिल में देवता की प्रतिमा स्थापित है।

सरांह से चूड़धार पर स्थित 'श्रीगुल' देवता के मन्दिर तक पहुंचने के लिए लगभग 15 किलोमीटर की पदयात्रा करनी पड़ती

है। बालक, वृद्ध व रोगी के लिए यह यात्रा दुर्गम है। मार्ग के लिए कुछ खाद्य-पदार्थ व पानी साथ रखना पड़ता है। है। लगभग सात किलोमीटर की चढ़ाई पार करने के पश्चात् एक गुज्जर का आवास आता है। यहां पानी की व्यवस्था है। यहां गुज्जरों से दूध उपलब्ध हो सकता है। यहां तक मार्ग में कायल व देवदार के वृक्ष हैं। जंगली-वनस्पतियों की गन्ध से वायुमण्डल प्रभावित रहता है। कभी-कभी तो किसी को सिरदर्द अथवा अन्य कष्ट की सम्भावना रहती है। गुज्जर के आवास से एक घण्टा पुनः चलने के पश्चात् जंगल का रास्ता समाप्त हो जाता है। 'काला नाग नामक स्थल से श्रीगुल मन्दिर व पर्वत शिखर दीखने लगता है यहां से दूर-दूर तक हरी घास, छोटे-छोटे पीले रंग के फूल और शिलाखण्ड़ दिखने लगते हैं। यहां एक अन्य मार्ग से भी पहुंचा जा सकता हैं। पुल-वाहल नामक स्थान से इस मार्ग द्वारा यात्री यहां पहुंच सकते हैं। यहां का दृश्य मनोरम है। यदि शिखर की ओर दृष्टि डालें तो शिलाओं और प्रस्तर-खण्ड़ों के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता। यहां पत्थर कंटीला सा है और स्पर्श करने पर चुभता सा प्रतीत होता है। यहां यात्री अपने को आकाश की ओर बढ़ता महसूस करता है। यदि मौसम साफ न हो तो ठण्ड अनुभव होती है लेकिन मन्दिर पहुंचने तक उत्सुकता बढ़ती रहती है।

'श्रीगुल' के मन्दिर के पास दो छोटे होटल है। इनमें चाय, और भोजन की व्यवस्था हैं। 'श्रीगुल' के मन्दिर में गोघृत निर्मित्त पदार्थ ही चढ़ते हैं। सिरमौर की ओर से हरिपुर, कुपवी और सरांह होता हुआ एक अन्य मार्ग भी यहां पहुंचता है। रेणुका, नाहन, पांवटा और राजगढ़ की ओर से आने वाले यात्री इस मार्ग से आते हैं यहां से सब कुछ नीचे की ओर दिखाई देता है। एक ओर जहां कुपवी दिखाई देता है वहां दूसरी ओर सरांह आदि के क्षेत्र दिखाई देते हैं। मन्दिर के पीछे की ओर एक चट्टान दो भागों में विभक्त है। इसके आगे प्राकृतिक शीतल जल की बावड़ी है। यहां खड़ा कर्मचारी स्नान के लिए जल देता है। जल इतना ठण्ड़ा है

कि पूर्ण स्नान सम्भव नहीं। यहां लोग सिर तथा शरीर के अन्य भागों पर जल छिड़कते है। इसके पश्चात् मन्दिर में प्रवेश करते हैं। मन्दिर के अन्दर दो पुजारी मन की इच्छा पूछते हुए प्रसाद चढ़ाते हैं।

चूड़धार में बना श्रीगुल मन्दिर वर्गाकार व पूर्वाभिमुख है लगभग आठ फुट ऊंची एक मञ्जिल में बरामदा भी है। इस की छत ढलानदार है। अब यहां बिजली की व्यवस्था भी है। मन्दिर के अन्दर देवदार की लकड़ी का एक अन्य मंदिर है इसमें छः इंच ऊंचा तथा चार इंच की परिधि का शिवलिङ्ग है। यहां जो भी भेंट दी जाती है उसे मन्दिर में लटका दिया जाता है। कुछ लोग तो यहां बलि भी देते हैं। कुछ भक्त यहां जागरण भी करते हैं। सायं, मध्यरात्रि तथा उषाकाल में श्रीगुल की पूजा की जाती है। प्रातः के समय भेंटें चढ़ती हैं। इसके बाहर एक मैदान सा है जहां लोग देवता को पूछते हैं। देवता को पूछने की विशिष्ट शैली है। लोग मैदान में बैठते हैं जहां देवता का माली आता है। कुछ ही समय में देवता के माली को श्रीगुल का आवेश होता है। अब इसकी वाणी को देवता की वाणी माना जाता है। यहां लोग व्यक्तिगत तथा घरेलू समस्याओं का समाधान पूछते हैं। भविष्य में कष्टों से मुक्ति के लिए सावधान रहने की प्रतिज्ञा करते हैं यहां आर्थिक दण्ड भी देना पड़े तो सबको सहर्ष स्वीकार्य होता है। सिरमौर जन-पद में इस देव की प्रभुता है।

'श्रीगुल' शब्द पर विचार किया जाए तो निम्न तथ्य सामने आते हैं। 'श्रीगुल में 'उ' का लोप तथा 'र' के स्थान 'ल' का प्रयोग करने से 'श्रीगुल' शब्द बनता है। पुराणों में 'अकुल' शिव का पर्याय बताया गया है। इसका अर्थ है 'अज्ञातकुल। इसी से यह 'श्रीअकुल' बना। कुछ समय पश्चात् 'श्रीगुल' के रूप में प्रचलित हुआ। स्थानीय भाषाओं में इसका उच्चारण 'शिरगुल' किया जाता है। 'शिव' को 'ऐन्द्रजालिक मन्त्रों' तथा कृत्यों का आचार्य भी माना जाता है। मन्त्र एवं तन्त्र उन्हीं

की रचना है। हिमाचली लोक-परम्परा में 'श्रीगुल' को शिव का ही अवतार माना गया है।

श्रीगुल के विषय में एक कथा है। इसके अनुसार शामा ग्रामवासी भकड़ू निःसन्तान था। वह पुत्र प्राप्ति की इच्छा से काश्मीर के पण्डित पाणु के पास गया। पाणु पण्डित सोया हुआ था। इसे जगाने के लिए भकड़ू ने माया निर्मित्त बिल्ली भेज दी। बिल्ली ने पाणु को तो जगाया परन्तु इस घटना से भकड़ू ब्रह्महत्या से ग्रस्त हो गया। पाणु-पण्डित ने उसे पहले भी ब्रह्महत्या से ही ग्रस्त कहा था। भकड़ू को बताया गया कि ब्राह्मणकन्या से विवाह करने पर ही इसका प्रायश्चित हो सकता है। ब्राह्मण कन्या से विवाह करने पर उसके दो पुत्र हुए। इनके नाम थे श्रीगुल तथा चण्ड़ेश्वर। इसके पश्चात् भकड़ू तथा उसकी पत्नी चल बसे। ये दोनों भाई मामा के घर रहने लगे। यहां 'श्री गुल' भेड़-बकरियां चराया करता था तथा चण्डेश्वर गाय। एक दिन मामी ने 'श्रीगुल को मारने के लिए सतू में विष मिला दिया। 'श्रीगुल' को इसका आभास हो चुका था वह सतु छोड़कर चूड़धार भाग गया सतु का पिण्ड ततैया के समूह में परिवर्तित हुआ। ततैया के दंश से मामी की मृत्यु हो गई। चूड़धार से श्रीगुल दिल्ली की ओर बहूमूल्य वस्तुएं लेकर चल पड़ा। उसके साथ कुछ अनुचर भी थे। मार्ग में वह रेणुका झील पर रूका। वहां एक शेर ने 'श्रीगुल' पर आक्रमण किया। इसनें न केवल उसे वश में ही किया अपितु कभी भी मनुष्य पर आक्रमण न करने का वचन भी लिया। जब वह दिल्ली पहुंचा तो दिल्ली के व्यापारी ने उसे ठगने का प्रयत्न किया। 'श्रीगुल' ने रेशमी धागा बेचने की इच्छा व्यक्त की। कहते हैं कि इस धागे का भार इतना अधिक बढ़ गया कि व्यापारी इसका मूल्य चुकाने में असमर्थ हो गया। व्यापारी के कहने पर तत्कालीन मुगल सम्राट नें 'श्रीगुल' पर जादू-टोना करने का अभियोग चलाया। सम्राट के सैनिक 'श्रीगुल' को बन्दी बना कर ले गए। उसे कारागार में डाल दिया गया। मुगल सम्राट ने गाय का वध करके श्रीगुल को गाय की खाल में बन्द करके सिल दिया। गूगापीर ने सम्राट को पराजित कर

'श्रीगुल' को मुक्त करवाया। इस के बाद 'श्रीगुल' चूड़धार में रहने लगा।

इस मन्दिर के पीछे से दांई ओर एक मञ्जिल का छोटा सा एक मञ्जिला भवन है। इसमें पिछले 15 वर्षों से एक महात्मा रहते हैं। पिछले चार वर्षों से महात्मा मौनव्रत पर हैं सर्दी हो या गर्मी महात्मा जी यहीं रहे है। यहां बैठने पर पता चलता है कि इनकी आयु लगभग 45 वर्ष होगी। मुख-मण्डल पर विशिष्ट आभा है। यहां जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को महात्मा जी की ओर से जलपान का प्रबन्ध है। पड़ोस के गांव वासी इस कार्य को भली भान्ति निभा रहे हैं। शीतकाल में जब पर्वत शिखर बर्फ से ढक जाता है तो महात्माजी को राशन का प्रबन्ध कर दिया जाता है। ये महात्मा संकेत से अपनी बात समझाते है। इन स्थल पर भी रात्रि ठहरने की व्यवस्था है। अधिक से अधिक तीस व्यक्ति यहां ठहर सकते हैं।

यहीं पर यात्रा समाप्त नहीं होती पर्वत शिखर तो और भी ऊपर है। श्रद्धालुओं के लिए पर्वत शिखर का महत्त्व और भी अधिक है। यहां से श्रद्धालु नंगे पैर पर्वत शिखर तक यात्रा करते हैं। नंगे पैरों से यात्रा करने वालों को यह यात्रा कुछ कष्टप्रद हो जाती है। ऊपर को जाने वाला मार्ग कुछ तंग भी है। ऐसा प्रतीत होता है मानों आकाश की ओर बढ़ रहे हों। यह पर्वत शिखर बड़े-बड़े शिलाखण्डों से आवृत है। इस शिखर पर बच्चे, बूढ़े तथा रोगी का जाना सम्भव नहीं है पर्वत शिखर पर पांच फुट ऊंची शिव प्रतिमा है। यह प्रतिमा कुछ वर्षों पहले ही यहां बनाई गई है। इससे पूर्व यहां शिवलिङ्ग ही स्थापित था। मूर्ति इतनी सजीव है मानो शिव अखण्ड़ समाधि में बैठे हों। इससे ऊपर कुछ नहीं है। चारों ओर आकाश ही दिखाई देता है। बर्फ से ढकी हिमालय पर्वत की चोटियां दीख पड़तीं है। यहां लगभग दस फुट का स्थान पत्थरों से सीधा किया गया है। यहां से दिखने वाले स्थान खिलौने प्रतीत होते हैं। उस समय की स्थिति अत्यन्त भयावह होगी जब यहां केवल दो ही व्यक्ति बैठ सकते थे। यहां से पूरा

संसार निम्न ही दीखता है। यदि साधन हो तो यहां से दिल्ली जैसे बड़े शहर भी दिखाई देने लगें। नंगी आंखों से दृष्टि दौड़ाना इसलिए भी सम्भव नहीं है कि यहां सब कुछ स्वप्नमय सा लगता है।

यहां से लगभग चार घण्टे पुनः चलकर सरांह पहुंचना होता है। इस स्थल पर यात्रियों का आवागमन बढ़ता जा रहा है। बस की अतिरिक्त सेवा न होने पर स्थानीय बस से ही यात्रा करनी पड़ती है। इस सम्बन्ध में प्रशासन स्वयं विचार कर रहा है। सम्भव कुछ वर्षों में बस सेवा और ठहरने के स्थान में वृद्धि हो जाए। इससे यात्रियों को सुविधा मिल सकेगी।

●

# हिमाचली हिन्दी कहानियों में नारी-जीवन

डॉ० कश्मीरी लाल

हजारों वर्ष का अनुभव है कि भारत वर्ष में पुरुष ने स्त्री को सदैव अपनी आवश्यकता के अनुरूप ढलते हुए देखना चाहा है। रीतिकालीन उपभोगमूलक एवं ऐन्द्रियपरक दृष्टि आज भी ज्यूं की त्यूं है। यह अलग बात है कि आज के युग में नारी ने संघर्ष, अस्तित्व, स्वाभिमान- आत्मभिमान एवं स्वावलंबन जैसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं को अपनाना प्रारम्भ कर दिया है। जिस स्त्री ने संसार का निर्माण किया उसी की दुर्गत होते देख साहित्यकारों ने अपना आक्रोश प्रकट किया। कई विधाओं में तथा कई रूपों में नारी के सम्मान का ध्वज उठने लगा। आन्दोलन होने लगे। समाज में अपमानात्मक जीवन ढो रही अबला ने जैसे ही अपनी विवशता का संकेत देना प्रारम्भ किया वैसे ही साहित्यकारों ने भी उस विवशता को समझकर स्त्री को उचित स्थान दिलाने का उपक्रम आरम्भ किया।

हिमाचल के हिन्दी के कहानीकारों ने स्त्री की वर्तमान दशा को समझते हुए अपने-अपने विचारानुसार संदर्भ उठाए हैं। साहित्यकार इस समाज के प्रति अपना रोष व्यक्त करता है। जिसमें स्त्री को छेड़ने की ललक दब नहीं रही। सुशील क़ुमार फुल्ल की कहानी 'अटकाव' की सुषमा इस प्रवृत्ति से बेहद दुखी है। वह कहती है, "मां, तुम्हारा ज़माना लद गया है। सोचती हूं कि एक ऐसा नारीदल तैयार किया जाए जो मर्द को नारी बना दे। उसके होश ठिकाने

लगा दे। मैं अखिलेश जैसों की हड्डियां मरोड़ दूंगी। अब तो नारी पुरुष की इच्छा का भक्षण है, फिर नारी की इच्छा सुप्रीम होगी। नर विवश-सा हड्डी के टुकड़े को तरसेगा" 'अनुपस्थित' कहानी की सत्या तथा 'ताश के पत्ते' कहानी की श्रेष्ठा भी समाज की महिलाओं के प्रति कुचेष्टा को लेकर अवसन्न हैं। 'थका हुआ इन्सान' कहानी में भी नारी शोषण के कई प्रसंग उभरते हैं। इस कहानी में मिस्टर कौड़ा जैसे पात्रों की शोषक प्रवृत्ति कई रूपों में उजागर होती है जो स्त्री को भोगात्मक वस्तु समझे हुए है। हमारे समाज ने धार्मिक उन्माद में भी स्त्री का ही, जन्मदात्री का ही अपमान किया है। 'कोहरा' कहानी में डॉ० फुल्ल ने इस अस्वस्थ दृष्टिकोण को प्रभावात्मक ढंग से उठाया है।

केशव की कहानियों की महिलाओं ने अपने जीवन को अपने ढंग से जीने का युगानुरूप चलन सीखना प्रारम्भ कर दिया है। कहीं-कहीं तो उनके पुरुष पात्र महिलाओं के आगे घुटने टेके हुए दिखते हैं। 'अलाव' कहानी में नारी को सम्पत्ति समझा जा रहा है और उस पर कैसे भी पाशविक अत्याचार किए जा रहे हैं पर "तरकस खाली है" कहानी की नारी अपने अस्तित्व को स्वतन्त्र ही नहीं अपितु स्वच्छंद भी बना सकने में समर्थ है। इस कहानी में एक ओर पुरुष पति के रूप में दीन हीन दिखाई दे रहा है तो दूसरी ओर भोग-विलासार्थं प्रक्रीया-गमन का कालीत सुख भोगने की प्रक्रिया को व्यवहारिक रूप दे रहा है। यहां नारी अपने पति के संदर्भ में तो स्वतन्त्रा एवं स्वच्छन्द है पर घर से बाहर पुरुष वर्ग द्वारा शोषित होकर भी उस दुष्चक्रात्मक उत्पीड़न से अनभिज्ञ है। अस्तित्व की रक्षा के उपक्रम में वह विभिन्न पुरुषों द्वारा मनोरंजनार्थ प्रयुक्त हो रही हैं। उधर 'वीनस के इर्द-गिर्द' कहानी में रेणुका का भरसक शोषण हो रहा। उसकी मां का नया पति ही उसके साथ यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वह रेणु की मां पर भी अत्याचार करता हैं। 'गटर' कहानी भी ऐसी कुवृत्ति की गवाही देती है जिसमें नारी की इच्छा-अनिच्छा का पक्ष बुरी तरह दब जाता में। नारी के शरीर का खुले-आम सौदा हो रहा है। 'मोड़' कहानी की रेखा भी हमारे पुरुष समाज की वासना प्रधान प्रवृति का शिकार होकर कौमायविस्था में ही पेट से हो जाती है पर

फिर भी वह पुरुष (सतीश) के साथ स्थापित भावनात्मक सम्बन्ध नहीं तोड़ सकती। 'एक नदी का मनोवेग' कहानी में केशव ने डी. एफ. ओ. अंकल द्वारा गीति की मां को अपने यौनसुखार्थ उपमुक्त करने की लीला चित्रित की है। उधर 'बाज' कहानी में पुरुष अपनी पुत्रीवत् संरक्षिता को ही अपनी कामक्षुधा का शिकार बनाने के णिए सन्नद्ध है।

केशव की कहानी 'मोर्चाबन्दी' की नारी अपने सम्मान, अधिकार एवं स्वातन्त्रय के लिए संघर्षशील दिखती है क्योंकि उसे अनुभव हो चुका है, "दुनियां में औरत होना सबसे बड़ा गुनाह है।" नियति, 'फासला' आदि कहानियां भी स्त्री दलन को अभिव्यक्ति हैं। इन कहानियों में नारी की विरोधात्मक प्रवृति भी उभरती है पर पुरुष समझता है कि स्त्री का अंग सौंदर्य दर्शनार्थ एवं भिगर्थ ही है। वह कभी भी चूकना नहीं चाहता," मालिक मकान की लड़की फर्श पर पोचा लगा रही है। वह एक दम ढीले-ढाले लिबास में है। झुकती है, तो उसके पुष्ट उरोजों की झलक मेरे खून में सनसनी पैदा कर देती है। मैं चेहरा दूसरी ओर कर लेता हूं लेकिन उस वक्त जैसे सिर के पीछे भी आंखें उग आती हैं।" विज्ञापनों में भी नारी को नंगा किया जा रहा है। 'गटर' कहानी में इसी अमर्यादित फैंशन की ओर संकेत है।

सुदर्शन वशिष्ठ की कहानी 'सेमल के फूल' में कामकाजी महिलाओं पर हो रहे शोषणात्मक प्रहार का मर्मिक चित्रण मिलता है। 'सरकारी पैसा' कहानी में फाटक वाला कर्मचारी किसी घरेलू पत्नी तक को छोड़ने में शायद अपना अपमान समझता होगा। यही कारण है कि वह अपने यौनसुख के लिए बसे-बसाए घर की युवा पत्नी को भ्रष्ट कर रहा है। बद्री सिंह भाटिया की कहानी 'नंगा वृक्ष' में जगदीश के मित्रगण उसकी सुन्दर पत्नी से केवल हास-विलासार्थ उसके घर जाते हैं। 'चोमों' कहानी की डोलमा जैसी युवतियां पुरुषप्रधान समाज की यौनेच्छाओं की पूर्ति हेतु अपने ही समाज द्वारा विवश की जा रही हैं। 'उसका सपना' कहानी के ठाकुर लोग ग्रामीण बहू-बेटियों

को खुलकर प्रयुक्त कर रहे हैं। पुरुष स्वयं तो परकीयविलासी होने के अवसर खोना नहीं चाहता पर पत्नी पर मात्र संदेह होने से ही उसे त्याज्य ठहरा देता है। 'नियति' कहानी में नारी को चारित्रिक दृष्टि से संदेहात्मक दृष्टिकोण अपना कर देखने की पुरातनपंथी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति मिली है। यही कारण है कि 'आहट' कहानी की नारी अनुभव करती है, "ये मर्द .......... मर्द की डिक्शनरी में प्यार का अर्थ सिर्फ सेक्स होता है, सेक्स........।" 'परत-दर-परत' कहानी भी स्त्री-शोषण का चित्रण है। चित्रा नामक पात्र इसका जीवंत एवं करूण प्रमाण है।

विजय सहगल की कहानियों में आधुनिक युग एवं संदर्भों के अनुरूप नारी एवं उसके इर्द-गिर्द फैली भौतिक एवं मानसिक समस्याओं का चित्रण मिलता है। यौनसुख के लिए नारी का उपभोग 'बिना पलक की मछलियां' नामक कहानी में दिखाई पड़ता है। यहां नारी को घर की शोभा नहीं अपितु भोग्य सिद्ध करने वाले कामी पुरुष बैठे हैं जो तरह-तरह की लड़कियों को भ्रष्ट कर रहे हैं। विराज नामक पात्र मि० मेहता जैसे लोगों के साथ स्त्रियों का सामूहिक शोषण कर रहा है! 'उमस' कहानी का बत्रा अपनी पत्नी से अलग ढूंढने की ललक धारण कर स्टैनो से फ्लर्ट करता फिर रहा है। 'रमजान मियां' कहानी की पत्नी तथा उसकी बेटियां भी बसंत जैसे पुरुषों की वासनापूर्ति का नर्मचारा सिद्ध हो रही हैं। 'अपने लोग' कहानी में बम्बई की खोलीनुमा क्वार्टरों जैसी जगहों में देह-व्यापार हो रहा है। मिसेज अब्राहम जैसी महिलाएं सिलाई-सेंटर की आड़ में चकला चला रही हैं। 'नरभक्षी' कहानी के भूषण जैसे पुरुष कीरती जैसी लड़कियों के दुरूपयोग का अवसर खोज रहे हैं। 'दायरे' कहानी की सरला भी बच नहीं पाई। नीला के पति ने उसे कई बार खाया-खर्चा है। 'विरासत' कहानी का सूबा सिंह रखैल पाले हुए है। 'आधा-सुख' कहानी की सविता भी उत्तारक के यौनाचरण का शिकार हो चुका है। विजय सहगल की कई कहानियों में यह संकेत मिलता है कि समानाधिकार खोजती नारी की दशा आज भी सुधर नहीं सको है। आज भी पुरुष का रवैय्या मध्यकालीन है। लड़की का पैदा होना अप्रसन्नता

कारक माना जाता है। पुरुष उसे अनिवार्य एवं सहभागी वर्ग के रूप में आज भी देख नहीं पाया है क्योंकि समाज में ऐसी दृष्टि अभी तक पनप नहीं सकी।

दिनेश धर्मपाल की 'कफन' कहानी की स्त्री भी उपेक्षा एवं अपमान को भोगने के लिए विवश है। 'अनाम' कहानी की नारी अपना शरीर बेचकर बच्चों का पोषण कर रही है। 'वह रोई कहानी की लाडो का सामूहिक उपभोग करने वाले सरजू तथा बिरजू नारी के प्रति क्रूरता का प्रमाण हैं। मस्त राम कपूर की 'ठकुरानी का स्पर्श' कहानी में दम्भी ठाकुर अपनी बहु को ही वेश्याओं के दलाल के हाथ बेच डालते हैं। 'वैतरणी के पार' कहानी में स्त्री पर खुले अत्याचार का वर्णन मिलता है। 'ब्रीफकेस' में भी नारी विषयक अस्वस्थ दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

एस. आर. हरनोट की कई कहानियों में नारी-शोषण की दयनीय झलक मिलती है। 'छब्बीसवां निशान' की कमला, 'पारवती' कहानी की मुनिया 'चन्द्र की मूंगफलियां' की कलसी जैसी नारियां समाज में आज भी जहां-तहां पुरुषों की कुत्सित वासना का शिकार हो रही हैं। 'गिद्धों की बिरादरी' कहानी में भी स्त्रियों की करूण स्थिति चित्रित है। 'पत्नीदान' कहानी के पुरुष अपनी आर्थिक उन्नति के लिए अपनी पत्नियों को अपने अफसरों से यौन-सम्बन्ध के लिए प्रस्तुत करते है "ब्रास के फूल" में भी स्त्री-शोषण की झलक मिलती है। 'चौराहे पर', 'पंजा' तथा 'मेज पर बटी लड़की' नामक कहानियों में भी हरनोट ने समाज को उद्‌बुद्ध करने का प्रयत्न किया है ताकि नारी-वर्ग पर हो रहे अमानवीय अत्याचार बंद किए जा सकें।

जगदीश शर्मा की कहानी 'सुलगती लकड़ी' तथा जमा हुआ जल' स्त्रियों के शोषण एवं अपमानात्मक प्रवृत्ति को उजागर करती है। आज भी सरसुती और कमला जैसी स्त्रियां समाज के हाथों लुट रही हैं। आज भी बन्तो जैसी स्त्रियों को कभी अनमेल विवाह का शिकार होकर तो कभी अभावग्रस्तता के पहाड़

तले दब कर तन लुटाना पड़ रहा है। हेमन्त और अमिता जैसी लड़कियां नोकरी के लिए अधिकारियों के आगे बिछने के लिए विवश हैं। विष्णु शर्मा की कहानी 'सूली ऊपर सेज पिया की' में नारी-वर्ग के शोषण की कथा मिलती है। 'रनम' कहानी में कहानीकार ने नारी की पीड़ा इस प्रकार अभिव्यक्त की है, "परमात्मा और नर दोनों ही मिलकर नारी पर अत्याचार करते आए हैं।" यदि नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं तो फिर ये अत्याचार क्यों ? कहानीकार ने अपनी कहानी 'वृद्धोयाति ग्रिहित्वा दण्डम्' में नारी के भव्य स्वरूप की कामना की है। नारी प्रशंसा पाकर, सम्मान पाकर, कृतकृत्य हो जाती है। प्रेम पा कर समर्पित हो जाती है। जूली का प्रसंग भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

शांता कुमार की कहानी 'सरसराहट' की वीना जैसी दुर्दशा हमारे समाज में आए दिन होती रहती है। कमला ठाकुर की कहानी 'एक नाम' की हिना भी सामाजिक अनाचार का ग्रास बन रही है। उन्हीं की कहानी 'अन्त' में भी नारी की हीन स्थिति का प्रकरण खुलता है। हिमेश की 'चोरी और सीनाजोरी' 'खबर जो कहानी बन गई', 'मलाईचोर', 'गुरगे', 'बदलते रिश्ते', 'धुएं में लुप्त एक याद', नाटक 'मुट्ठी में बंद खुशबू' जैसी कहानियों में नारी वर्ग के प्रति पुरुषों के असम्मानजनक एवं शोषक दृष्टि-कोण का परिचय मिलता है। लेखक ने जगह-जगह आक्रोश व्यक्त किया है। 'कैलाश भारद्वाज' की कहानी 'हत्या' में कन्या के जन्म को ही अशुभ एवं अहितकर माना जा रहा है।

दीपा त्यागी की कई कहानियों में नारी-जागरण एवं नारी उत्थान का संदर्भ उठता है। उनके कहानी पात्र जागरूक हैं। 'शुरूआत' कहानी की रजनी अपने अपहरण के उपरान्त समाज की मानसिकता को लांक्षत कर सभ्य समाज में न लौटकर अपहरणकर्त्ता के साथी बचन सिंह से ही विवाह कर लेना उचित समझती है। उसे पता है कि सुरक्षित एवं सच्ची कन्या का सकुशल घर लौटना अधिक अपमानात्मक समझा जाएगा। 'दिलदार' कथा का अमित अपने कुत्सित भावो के जगने पर

प्रेमिका (जो अब पत्नी हैं) से दहेज का तकाजा करने लगता है। परिणीता अनु, को अब प्रेमालाप के स्थान पर थप्पड़ सहने पड़ रहे हैं। 'धुरी से बंधे हुए' कहानी की नारी स्वयं को तथा सम्पूर्ण नारी वर्ग को एक धुरी से बंधे हुए अनुभव करती है। 'बीमार शहर' की नारी पुरुष के प्रेम को काम तक सीमित अनुभव करके दुःखी है। 'अनजाने रिश्ते' की रमा उत्पीड़न में जीती हुई जूझ रही है, लड़ रही है और स्वतन्त्र अस्तित्व बनाना चाहती है। 'तलाक के बाद' कहानी में अनीता अपनी पूर्णता की तलाश में है। 'दिशाहीन' कहानी में कामकाजी औरतों के प्रति समाज के रुग्ण दृष्टिकोण से उत्पन्न यंत्रणा को विनीता सहते-सहते तंग आ चुकी है हार चुकी है। 'अहसास' कहानी की समस्या यह है कि पुरुष स्त्री को अपने दृष्टिकोण के रंग में रंगना चाह रहा है और स्त्री (मनीषा) घुटन महसूस करती है। 'औरत का दर्द' कहानी में चांदनी को सामाजिक दृष्टि से विद्रोह करते हुए देखा जा सकता है। 'अंधेरे का अंत' कहानी में नारी को अपने स्वार्थ के लिए कूटनीति में लपेट लिया जाता है। 'लौटे कदम' कहानी में नारी-प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण तथा वात्सल्य की पृष्ठभूमि उभरती है। 'काहिका' में ममता की विलक्षण भावना मिलती है। 'दर्द' कहानी में दीपा त्यागी ने यह कहना चाहा है कि प्रायः औरत ही औरत की शत्रु सिद्ध हो रही है। "नहीं भाभी! औरत-औरत का दर्द कहां समझती है? अगर दर्द समझती तो एक औरत दूसरी औरत की गृहस्थी पर मार कर उसे घर से बेघर न करती"। 'दूरियां' कहानी में भी पुरुष ने स्त्री को समझने का प्रयास नहीं किया। वात्सल्य की प्रतिमूर्ति मनीषा नये पति द्वारा ममत्व से दूर कर दी जाती है जहां वह तड़पती हुई मधु को उपेक्षित करने के लिए विवश है। "लौट आओ पापा' में नर-नारी सम्बन्धों की अनिवार्यता स्थापित हुई है। 'रंगमंच' कहानी में भी नर के नारी के प्रति बीमार दृष्टिकोण को दर्शाया गया है।

विजया प्रभाकर की कहानी 'निर्णय' में नीलम अपनी संकल्पना के अनुरूप निर्णय-क्षमता रखते हुए भाई से कह डालती है, "भइया! मैं उस कमीने के घर शादी नहीं करुंगी। "अपने-

सोमसी

अपने दायरे" की निर्मल स्वयं को समाज के लिए निस्वार्थ भाव से अर्पित कर चुकी है। 'सजाए जिंदगी' कहानी की रजिया अपनी आन के लिए अपने दूर के चाचा की भूख का ग्रास बनने से बचने के लिए उसकी हत्या कर डालती है और निर्णय मिलते ही आत्म-हत्या कर लेती है। 'विघटन' कहानी की नारी सम्पन्न परिवार की स्त्री होते हुए भी पति के प्रेम को तरस रही है। इसमें चेतना आती है तो सोचती है, "मेरे अन्दर एक आग है, लावा है। जब उसे ही मेरी चिंता नहीं है तो मैं क्यों उसके विषय में सोचती रहूं, आदर्शों से बंधी रहूं। क्यों न मैं खुले गगन में विचरण करूं।"

हिमाचल के कहानीकारों ने नारी जाति की समस्याओं को समझा-परखा है। ममता, प्रेम, त्याग, बलिदान, भोग, प्रतिशोध ईर्ष्या, विलासिता, संरक्षिका आदि विविध प्रसंग उठाते हुए इन कहानीकारों ने नारी के स्वरूप को निदिष्ट किया है। महिलाओं की मानसिक समस्याओं को कई कहानीकारों ने उजागर किया है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के बावजूद नारी के विषय में हमारे समाज का दृष्टिकोण यथेष्ट रूप में नहीं बदला। यही कारण है कि महिला कहानीकारों ने पुरुष प्रधान समाज के प्रति अपना रोष व्यक्त करने में अधिक अवकाश रखा है।

●

# पीरनिगाह

सतीश बस्सी

देवी-देवताओं के प्रदेश हिमाचल में एक जिला हैं ऊना। इसी ऊना जिला के मुख्यालय से कोई 8 किलोमीटर दूर जेजों-ऊना-मण्डी एक अभागी सड़क पर स्थित है एक धार्मिक स्थल (जियारत) जिसका नाम है पीरनिगाह। हिन्दू-मुसलमानों के सांझे पीर का पूजा स्थल।

इस सड़क को मैंने अभागी क्यों कहा? इस का कारण यह है कि कभी उत्तरी भारत को कुल्लू मनाली-लेह लद्दाख तथा दूर-दराज के चारकन्द समरकन्द के प्रदेशों से जोड़ने वाली यही सड़क थी। जेजों मण्ड़ी से चीनी-गुड़, कपड़ा व नमक इत्यादि सभी तरह का राशन पानी इस सड़क के माध्यम से बैलगाड़ियों खच्चरों, घोड़ों, बैलों, बकरियों की पीठों पर लद कर इन प्रदेशों में पहुंचा करता था। दिन रात इस मार्ग पर बैलों के गलों की घण्टियों के स्वर गूंजा करते थे, फिर सन् 1928 में इस पर कभी-कभार चलने लगीं होशियारपुर की विकटरी ट्रांस्पोर्ट की बसें। ये बसें चलती थीं होशियारपुर तथा जाहू के बीच। वही जाहू जो मण्डी रियासत की राजधानो मण्डी से केवल कि. मी. पहले है। जाहू था उन दिनों पंजाब का अन्तिम स्थान।

शायद यह सड़क कभी वैधव्य का दु:ख न झेलती यदि भाखड़ा नाम का विशाल बान्ध न बनता। औरों को सुख समृद्धि देने वाला भाखड़ा बान्ध इस सड़क के लिए दानव से कम नहीं प्रमाणित हुआ। भाखड़ा बान्ध बनने से रुका हुआ गोविन्द सागर का पानी जा घुसा शिवालिक की पहाड़ियों में बहने वाली खड्डों में।

जिससे यह रास्ता बन्द हो गया। गोविन्द सागर का और इलाकों को जीवन देने वाला पानी ले बैठा इस बेचारी सड़क को। बन्द हो गया यह मार्ग। बन्द हो गये इस पर चलने फिरने वाले। समाप्त हो गई इस पर चहल पहल। अब तो यह मार्ग एक लिंक मार्ग मात्र रह गया। कभी कभार ही इस मार्ग पर किसी भद्रपुरुष के दर्शन होते हैं। अब तो इस पीर निगाह से 3 किलोमीटर आगे पहाड़ी टीले पर बने तलाई के चौक में निठल्ले बैठे लोग इस सड़क की पुरानी गाथा बड़े भग्न हृदय से सुनाते हैं।

पीरनिगाह का अर्थ है सन्त की कृपा दृष्टि। यहां के लोगों के अनुसार पुराने जमाने की बात है कि यहां पर बगदाद से आकर एक मुसलमान पीर ने डेरा जमाया और लगे करने इबादत (पूजा)। इस तपस्या से उन को सिद्धि प्राप्त हो गई। उन की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई और लोगों के झुण्डों के झुण्ड अपना दुःख दर्द दूर करवाने के लिए आने लगे। लाखों लोगों के दुःख दर्द दूर हो गये। अतः इन पीर महाशय का नाम पड़ गया लखदाता पीर।

इस पीर निगाह में जो बसोली पंचायत में पड़ती है, के पास के सैली नाम के गांव में श्री रासदास सीकड़ी-खत्री नाम का एक व्यक्ति था, उसे कोढ़ हो गया। उसने काफी इलाज करवाया किन्तु ठीक नहीं हुआ। जब उस का कोढ़ बढ़ गया तो उस के घर वालों ने उसे घर से बाहर कर दिया। वह गांव से बाहर झोंपड़ी बनाकर रहने लगा। जब उसके कानों में लखदाता पीर की ख्याति पहुंची तब वह भी लोगों के कहने सुनने पर इसी पीर निगाह पर आ पहुंचा और यहीं पर लखदाता पीर की शरण आकर रहने लगा।

लखदाता पीर ने उसे पानी में धूने की राख जिसको भभूती कहते हैं मिलाकर पिलानी आरम्भ कर दी। हुआ क्या कि वह ठीक होने लगा। कुछ मास उपरान्त उसका कोढ़ ठीक हो गया। कोढ़ मुक्त होने के बाद उसने अपने गांव वापिस

जाने का विचार त्याग दिया और यहीं का होकर रह गया। दिन रात वह लखदाता पीर की सेवा करता अपने तन-मन की सुध लिए बिना। इससे उस का नाम निगाहिया राम पड़ गया। लोग उसका असली नाम रामदास तक भूल गए। इस तरह उसे पीर की सेवा करते हुए 12 वर्ष बीत गये।

बूढ़ा पीर लखदाता एक दिन बीमार हो गया और उसे अपने बचने की कोई सम्भावना नहीं रही। उसने सब लोगों के सामने अपने चेले निगाहिया राम को उसकी निरन्तर सेवा से प्रसन्न होकर इस धार्मिक स्थल का अपनी मृत्यु उपरान्त उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया और उसे वरदान दिया कि उस की मौत के बाद भी उसका बराबर आशीर्वाद यहां आने वाले भक्तों पर बना रहेगा। बरदान तो देगा निगाहिया राम और आर्शीवाद होगा लखदाता पीर का।

इतना कहकर लखदाता पीर ने प्राण त्याग दिये। तब से लेकर भक्तों को वरदान होने लगा निगाहिया राम और स्वर्गीय पीर के आर्शीवाद से दुखियों के दुःख दूर होने लगे। इस तरह इस धार्मिक स्थल की महानता बराबर बनी रही। कुछ काल बाद निगाहिया राम भी मर गया और उसकी कब्र इस गुफा के भीतर बना दी गई। इसी कबर की अब लोग पूजा करते हैं। यहां पर हर वीरवार को एक मेला लगता है। ज्येष्ठ मास के वीरवार को यहां हजारों की संख्या में लोग इक्ट्ठे होते हैं। लंगर यहां पर प्रतिदिन चलता है जिसमें सौ-पच्चास लोग खाना खाते हैं।

इस धार्मिक स्थल का प्रबन्ध बसौली गांव की पंचायत करती है। इस स्थल की आय लगभग 5 लाख प्रति वर्ष है। इस आय से बसौली गांव में हाई स्कूल चल रहा है। इस धार्मिक स्थल में अण्डा, मीट खाकर तथा शराब पी कर आना निषेद्ध है। लोग कहते हैं कि यदि कोई इस बात का उल्लंघन करता है तो उसे पीर क्षमा नहीं करता है और

उसे उल्टा कर देता है।

इस धार्मिक स्थल से एक और किम्वदन्ती जुड़ी हुई है। यहां के लोगों के कथनानुसार अपने अज्ञात वास के काल में पाण्डव लोग यहां पर ठहरे थे और उन्होंने यह गुफा बनाई थी। यह सोचकर यहां रुके थे कि इस वीरान जंगल में उन्हें कोई भी देखने वाला नहीं है, किन्तु एक रात जब वे सोये हुए थे तब उन्होंने हाथ से आटा पीसने वाली चक्की के चलने तथा दही के बिलोने की आवाज सुनी। बाद में उनके नाक में पकवानों के तलने की सुगन्ध आई। उनको पता चल गया कि यहीं आस-पास में कोई आबादी अवश्य है। तब उन्होंने यहां से भाग कर और किसी स्थान पर जाने की ठान ली।

इस स्थान को छोड़ते समय पाण्डव लोग इस क्षेत्र के लोगों को शाप दे गए कि यहां पर न तो कोई बान की चारपाई सोयेगा, न आटा पीसेगा, न दही बिलोयेगा, न हल चलायेगा और न ही पकवान तलेगा। तब से लेकर न तो यहां पर कोई अपनी चारपाई बान से बुनता है, न कोई पकवान तलता है और न कोई दही बिलोता है, इत्यादि-इत्यादि।

●

# विवाह संस्कारों में मामा को गालियां

**संजय कुमार अवस्थी**

हिमाचल प्रदेश के वैवाहिक लोकगीतों में जहां कई क्षण करूणा व गम्भीरता के आते हैं, वहीं व्यंग्यबाण रूपी गालियों द्वारा मनोरंजन का अभाव नहीं है। विवाह में विभिन्न संस्कारों के समय गाली गीत गाए जाने की प्रथा है। इन गाली गीतों का अपना विशेष महत्त्व होता है। सबसे ज्यादा इन व्यंग्य-बाणों का प्रहार 'मामा-मामी' को ही सहना पड़ता।

मण्डी जिले में यह रिवाज है कि जब मामे-मामियां विवाह पर आते हैं तब लाड़े (दूल्हे) के घर की औरतें उनका स्वागत करने के लिए प्रवेश द्वार पर खड़ी होकर दूल्हे को गीत सुनाती हैं :

"ऊच्चें चढ़ी के दिखदी जी ऽ,
तेरे मामे जे आए।
मामियां भेडां ऽ दियां छत्तियां जी,
मामे चारदे आए। मामियां साबणे दिया बट्टियां जी
मामे घसदे आए।"

अर्थात "दूल्हे राजा! तेरे मामे मामियां आ गई हैं। पर तेरी मामियां तो भेड़ की बच्चियों के समान हैं। साबुन की टिकिया हैं और मामे ग्वाले हैं, धोबी हैं उन्हें चारते और घिसते ला रहें है।'

यह सुनकर मामियां चुप नहीं रहतीं वह अपना परिचय बड़ी ठाठ से देती हैं। यथा—

"मामियां मैलां दियां राणिया जी
मामे राज्जेयां दे जाए।
मामेयां दे हिलकदे घोड़े जी,
मामियां दे चमकदे डोलेऽऽ।"

अर्थात्—'मामियां तो महलों की रानियां हैं और मामे राजकुमार।, मामे घोड़ों पर आ रहें हैं और मामियां पालकी में आ रही हैं।'

विवाह की पूर्व संध्या पर सांद का कार्यक्रम होता है। इसमें दूल्हे के शरीर पर उबटन लगाया जाता है और उस के सिर पर तेल डाला जाता है। मामा के आने पर ही सांद का कार्यक्रम शुरू होता है।

एक ओर सांद शुरू होती है और दूसरी ओर महिला मण्डली मामे को गालियां गाने छिड़ जाती है:—

इसी बेल्ले मामा ऽ धारां दा बांदर भैणो,
इसी बेल्ले।
इसी बेल्ले मामा ऽ झुड़यां दा गीद्दड़ भैणो,
इसी बेल्ले।
इसी बेल्ले मामा ऽ, छप्पड़ा दा मैढक भैणो,
इसी बल्ले।"

अर्थात्' सांद के समय मामा पहाड़ों पर रहने वाला बन्दर लग रहा है, झाड़ियों में रहने वाला गीदड़ लग रहा है, साथ ही जोहड़ में रहने वाला मेढ़क भी लग रहा है।

सांद पर सारा खर्च मामा करता है। इसी सम्बन्ध में महिलाओं द्वारा यह पंक्तियां गाई जाती हैं:—

"मामेया लई लै चांदिया दा रपईया,
बदलैं आपणीया लाड़ीया अहां जो दई जा।"

महिलाएं, मात्र चांदी के सिक्के में मामी का सौदा कर रही हैं।

सांद के समय मामा और अन्य सम्बन्धी कटोरी से दूर्वा-दल के साथ तेल निकालकर लाड़े के सिर पर बारी-बारी से डालते हैं। पैसों से उआरण्डा (पैसों को सिर पर घुमाना करके पास बैठे नाई को देते रहते हैं। इस समय महिलाएं चुप बैठी रहती हैं परन्तु मामे की बारी आने पर यह गायन मण्डली यह गाली गीत गाना आरम्भ कर देती हैं :—

रूणक्या सुण कटोरिए, भर तेल्ले जो,
हौर तेल संजोई लया तेरे मामे ने।
मामे जो पैसा धेल्ला कुछ नी सरया,
मामी तेल्लें पाई, मुइए इसा बेल्ला जो।
नाई परोत राजी होए,
घरा जो कामी आई, मुइए इसा बेला जो।"

महिलाएं तेल की कटोरी को सम्बोधित करते हुए कह रही हैं—"हे सोने की सुन्दर कटोरी, तेरे तेल को मामे ने लाड़े के सिर पर छिड़का परन्तु उआरण्डा करने के लिए मामे की जेब में एक धेला भी नहीं था। उसने अपनी लाड़ी से ही उआरण्डा कर दिया और फिर उसे नाई को दान में दे दिया। नाई पुरोहित खुश हो गए कि घर में काम करने वाली तो आई।"

इस प्रकार जब तक बारात वधू घर के लिए प्रस्थान नहीं करती, बेचारे मामे को इन व्यंग्यवाणों की बौछार सहनी पड़ती है परन्तु इस अवसर पर गालियां बुरी नहीं लगतीं, अच्छी लगती हैं।

●

# ब्रह्मपुरी (गादी) सन्दर्भ सूची

### १. ग्रन्थसूची

आत्रेय, कांशीराम पठानिया

**हिमाचल परिचय**, टिहरा, मण्डी, IV, ७७, III पृ०

**हिमाचली लोकसाहित्यमंजूषा**, टिहरा, मण्डी

कपूर, बी. एल.

**हिमाचल इतिहास और परम्परा**

कल्हण

**राजतरंगिणी**, विश्वबन्धु, सम्पा० होश्यारपुर, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान, १९६५, दे० अष्टम तरंग

काश्यप, पद्मचन्द्र

**हिमाचल प्रदेश का सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक अध्ययन**

कौशल, रामकृष्ण

**हिमाचल प्रदेश — अ सर्वे आफ् द हिस्टरी आफ् द लैण्ड एण्ड इटस् पीपल**, बम्बई, मिनर्वा बुक शाप, १९६५, १५२ पृ०

गूत्स हेरमन

**अर्लि वुडन् टैम्पलज् आफ् चम्बा**, लीदेन, ई० जी० ब्रिल, १९५५

मियां गोवर्धनसिंह

**आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर आफ् हिमाचल प्रदेश**

**हिस्टरी आफ् हिमाचल प्रदेश**

ग्रियर्सन, सर जार्ज अब्राहम

**लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया**, १९१६ पुनर्मुद्रण, दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास, १९६८, भा. ९ खं० ४ गादी पृ० ७९२-८१६

चिब, सुखदेवसिंह
**दिस ब्यूटिफुल इण्डिया — हिमाचल प्रदेश**, नई दिल्ली, लाइट एण्ड लाइफ् पब्लिशर्ज, १९७७, १३९ पृ०

जस्टा, हरिराम
**हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य**, दिल्ली, सन्मार्ग प्रकाशन, १५१ पृ०

टर्नर, रा० लि०
**अ कम्पैरिटिव डिक्शनरी आफ् द इण्डो-एरियन लैंग्विजिज्**, लन्दन, आक्सफर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १९६६ ८४१ पृ०

ठाकुर मौलूराम
**हिमाचल के लोकनाट्य और लोकानुरंजन**
**हिमाचल प्रदेश के घटना और श्रम प्रधान गीत**, शिमला, भाषा अकादमी **हिमाचल में पूजित देवी देवता**, नई दिल्ली, ऋषभ चरण जैन एवं सन्तति

दीक्षित, सतीशचन्द्र
**(महाराजा संसार चन्द** नाटक) सुजानपुर टीरा, १९७७, १०६ पृ०

नन्द कुमार
**गद्दी जनजीवन — ऐतिहासिक एवं सामाजिक परम्परा** चण्डीगढ़, बन्धु भारतीय प्रकाशन

नेगी, ठाकुर सेन
**शेडयूल्ड ट्राइवज् आफ् हिमाचल प्रदेश**, शिमला, १९७६
**हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक गेजेटिअर — चम्बा**, शिमला १९६३

पोस्टेल, एम्.
**एण्टिक्वियटिज् आफ् हिमाचल**, बम्बई, प्राजेक्ट फार इण्डियन कल्चरल् स्टडीज् १९८५, ३२६ पृ०

फोगेल, जे. पी. एच.
**एण्टिक्वियटिज् आफ् चम्बा स्टेट**, कलकत्ता, १९११, खं० १ इंस्क्रिप्डान्ज आफ् द प्रिमुहम्मदन पिअरिअड़
**हिस्टरी आफ् द पंजाब हिल स्टेटस्**, लाहौर, १९३३

बैली, टी. ग्रैह्म
**लेंग्विजिज् आफ् द पंजाब नादर्न हिमालयाज्**, लन्दन, रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९०८

भारत — जनगणना
**ब्रह्मौर — अ विलिज सर्वे — हिमाचल प्रदेश**
सेन्सस् आफ् इण्डिया १९६१, भा. २० खं० ६, ग्रं० ५, दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, १९६४, VIII, १२६ पृ०

रणपतिया, अमरसिंह
**गादी — हिन्दी प्रयोगात्मक शब्दावली**, शिमला, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि० प्र० १९८२, २११ पृ०
**हिमाचल इतिहास और संस्कृति के अंश**, दिल्ली, सन्मार्ग प्रकाशन
**हिमाचली लोकसाहित्य**, दिल्ली, सन्मार्ग प्रका०

रन्धावा, महेन्द्रसिंह
**कांगड़ा — कला, देश और गीत**, बालकराम नागर अनु० नई दिल्ली, साहित्य अकादमी, १९७०, ४२४ पृ०

राजपत्र
**पंजाब डिस्ट्रिक गैजेटिअर्ज् — कांगड़ा डिस्ट्रिक**
भा० ७, खं० अ, १९२४-५, लाहौर, १९२६,
गादी सांग्ज, पृ० xii-xvii, गादी डायलक्ट, पृ० xvii-xxxvii
— — **चम्बा स्टेट**
भा० xxii अ, १९०४, लाहौर, १९१०
गद्दीज् आफ् चम्बा एण्ड कांगड़ा, पृ० १६७-५२, खजिआर-ब्रह्मौर, पृ०, २९२-३

राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह
**महाराज संसार चन्द — कांगड़ा चित्रकला के प्रधान पोषक**
दिल्ली, आत्माराम, १९५९, १५० पृ०

रोज, एच्० ए०
**ग्लासरी आफ् द ट्राइब्ज एण्ड कास्टस् आफ् द पंजाब एण्ड नार्द-वेस्ट फ्रण्टीयर प्राविन्स**, डेंजिल इब्बतसन द्वारा १८८३ में तथा ई. डी. मैकलेगन द्वारा १८९२ में पंजाब की जन-

गणना पर आधारित तथा एज. ए. रोज द्वारा सम्पा. १८८३, पुनर्मुद्रण, पटियाला, भाषा विभाग, पंजाब, १९७०, भा० २ गद्दी गादी पृ० २५५-७१

वैद्य, किशोरी लाल
**कल्चरल् हेरिटेज आफ् द हिमालयाज्**, नई दिल्ली, नेशनल पब्लि० हाऊस, १९७७, १८३ पृ०
**पहाड़ी चित्रकला**, नई दिल्ली, नेशनल० १९६९, १४, २६३ पृ०

व्यथित, गौतम शर्मा
**हिमाचल प्रदेश — लोकसंस्कृति और साहित्य**, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, १९८०

शर्मा बंशी राम
**हिमाचल प्रदेश के घटना और श्रम प्रधान गीत**, शिमला, भाषा अकादमी **हिमालय की पौराणिक जातियां**, दिल्ली, आर्य प्रका० मण्डल

शर्मा, शमी
**पंजाब के पर्वतीय प्रदेश**, होश्यारपुर, विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, १९६४, ४२ पृ०
**हिमजा**, सेराथाना, कांगड़ा, पोथीघर प्रका० २०३५ वि० ११० पृ०

शशि, श्यामसिंह
**गद्दी ट्राइब आफ् हिमाचल प्रदेश — अ सोसिअलाजिकल स्टडी** नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज, १९७७, १९९ पृ०
**नोमेडज् आफ् हिमालयाज**, दिल्ली, संदीप प्रका०
**भारत के यायावर**, नई दिल्ली, किताब घर
**हिमाचल — नेचर्ज पीसफुल पेराडाइज**, दिल्ली, इण्डियन स्कूल स्पलाई डिपो, १९७१, ३११ पृ०
**हिमालय के यायावर**, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार

शास्त्री, द० दे०
**आदि वासी गद्दी**, देहरादून, हिमालय ग्रन्थ महल, १९५३

सांकृत्यायन, राहुल
**पुरातत्त्वनिबन्धावली**, इलाहाबाद, किताब महल, १९५८, २९० पृ० (तु० वज्रयान और चौरासी सिद्ध (बौद्ध धर्म) पृ० १०९-३०)
हचिन्सन, जे०
**हिस्टरी आफ् द पंजाब हिल स्टेटस्**, लाहौर, १९३३
हिमाचल क० सं० भा० अकादमी
**कथा सरवरी**, शिमला, भा० २ चम्बा की लोक कथाएं (पहाड़ी)
**पहाड़ी लोक साहित्य — संस्कारगीत — हिमाचल के लोकगीत** शिमला, १९८२. VIII, २०० पृ०
**पहाड़ी — हिन्दी शब्दकोश**, शिमला, १९९०,
हिमाचल भाषा विभाग
**हिमाचली लोकगीत**, शिमला
हिमाचल भाषा संस्थान
**चंगेर फुल्लां री** (पहाडी भाषा निबन्ध) शिमला ४२ पृ.
**हिन्दी-हिमाचली (पहाड़ी) अनन्तिम शब्दावली**, शिमला, १९७०, viii, १९४ पृ.
**चंगेर फुल्लां री** (पहाड़ी भाषा निबन्ध) शिमला ४२ पृ०
**हिन्दी — हिमाचली (पहाड़ी) अनन्तिम शब्दावली**, शिमला, १९७०, VIII, १०४ पृ०

## लेख सूची २

अरूण, नरेन्द्र
चम्बा चित्रकारी—एक पहचान, **सोमसी** शिमला XII, ३-४ जुलाई-अक्तूबर १९८६ पृ. ११६
बसोआ — एक विवेचन, **सोमसी** XII २, अप्रैल १९८६, पृ० ६५-७०
आचार्य, विश्वनाथ
चम्बा का लोकजीवन, **जन साहित्य**—पार्वती लोकमानस विशेषांक (पटियाला) V, ५-७, मई-जुलाई १९६६, पृ० ८७-९०
आनन्द, मुलकराज
ब्रह्मौर, मार्ग — हिमाचल हेरिटेज (दिल्ली) XXIII,

२, मार्ग १६७२

ओहरी, विश्वचन्द्र

चम्बयाली उपभाषा, **पहाड़ी भाषा और लोक साहित्य** (शिमला भाषा विभाग) १६७६, पृ० ५५-६६

चम्बा में फसल बाड़ी, **हिमभारती** (शिमला) I, २, जून १६६६, पृ० २४-३४

कपूर, चन्द्रमणि

चम्बा के लोक नृत्य, **हिमोत्कर्ष** (ऊना) XI, ७ जुलाई १६८७, पृ० १७-१८

कर्मसिंह

मिंजर, **हिमभारती** XX, ४, दिस० १६८८, पृ० ८६-६०

केशवचन्द्र

हिमाचल प्रदेश की जनजातियों का ऐतिहासिक परिचय, **सोमसी** IX, ३, जुलाई १६८३ पृ० २५-३१

कौशल, धर्मचन्द

चम्बा राज्यकुल द्वारा सम्मानित देवता — नाग मंढोर, भटियात का सर्वपूजनीय, **सोमसी** IX, २, अप्रैल १६८३ पृ० ७०-७२

भटियात का चमत्कारी देवता — नाग विणतरू, **सोमसी** VIII, १ जन० १६८२, पृ० ६४-६, XIV, २, अप्रैल १६८८ पृ० ८३-५

गुलेरी, पीयूष

पहाड़ी भाषा और साहित्य का इतिहास तथा उपलब्धियां, **सोमसी** XVI, ३-४ जुलाई-अक्तू० १६६०, पृ० १-१६

गूत्स, हेरमन

एण्टिक्यिटिज् आफ् पंजाब हिल डिस्ट्रिक आफ् चम्बा, **मार्ग**, मार्च, १६५७

मियां, गोवर्धन सिंह

हिमाचल में मन्दिरों का स्थापत्य, **हिमप्रस्थ** (शिमला), XXVI, १०, जन० १६८१, पृ० २३-६

चमन लाल

चम्बा के धर्मस्थल, **हिमोत्कर्ष** XI, ७ जुलाई १९८७ पृ० ८-१०

चम्बा विशेषांक, **हिमोत्कर्ष**, जुलाई १९८५

त्रिलोचन महादेव का मन्दिर और उसकी लोककथा, **हिमोत्कर्ष**, XI, ४ अप्रैल १९८७, पृ० १८-२०

भरमौर (ब्रह्मपुर) के गद्दी, **हिमोत्कर्ष**, XI ५-६, मई-जून, १९८७, पृ० ३७-४०

चम्बयाल, विजय शर्मा

चन्बे रे शिखर शैली रे मन्दिर — इक शास्त्रीय विवेचन, **हिमभारती** XVII, २ मार्च १९८५, पृ० ५९-६०

चौधरी, रतनलाल

कांगड़ा घाटी से मणिमहेश यात्रा, **सोमसी** XIII, १, जन० १९८७ पृ० ८४-६

जसरोटिया, रमेश

पहाड़ी संस्कृति तथा कला के स्रोत — पनघट शिलाएं **सोमसी** VII, ४, अक्तू० १९८७, पृ० ९०-९२

**हिमाचल प्रदेश के घटना और श्रम प्रधान गीत**, शिमला, भाषा अकादमी

जस्टा, हरिराम

चम्बा जनपद में नाग, **सोमसी** IX, ३, जुलाई १९८३, पृ० ७०-७७

टैम्पल, आर. सी.

सम हिन्दू फोक सांग्ज फ्राम् द पंजाब, **जनरल आफ् द एशियाटिक सोसाइटी आफ् बंगाल** (कलकत्ता) भा० ५१, खं० १, अं. ३-४, १८८२, गादी पृ० १५१-२५५

ठाकुर विद्या चन्द

चम्बयाली प्रेम गीत, **सोमसी**, X, ४, अक्तू० १९८४, सुन्नी भूंकू, पृ० ४१-३

चम्बयाली लोकगीतों में रसयोजना, **सोमसी** XII, १ जन० १९८६, पृ० २१-४

चम्बा — एक नज़र में — जिज्ञासा, **हिमभारती** XIV, ३,

सित० १९८२, पृ० ७९-८१

मूषकों द्वारा पोषित राजा मूशा शर्मा, **हिमभारती** XV, २, जून १९८३, पृ० ४८-९

राजे रे बगता मंझ चम्बे रा राजकाज, हिमभारती XVII, १, मार्च, १९८५, पृ० ३८-४०

शिव कैलाश की धरती — गद्देरन क्षेत्र भरमौर **हिमभारती** XV, ४, दिस० १९८३, पृ० २८-४६

हिमाचल के मेले — त्यौहार — चम्बा जिले के सन्दर्भ में, **हिमभारती** XV, ३, सित० १९८३, पृ. ९-१६

डोगरा, देसराज

गुज्जर जनजाति में प्रचलित विवाह प्रथाएं, **सोमसी** XV, ३, जुलाई १९८९ पृ. ४२-४

डोगरा युगल किशोर

कांगड़ा में गद्दी जीवन, **सोमसी** XII, ३-४, जुलाई-अक्तू. १९८६, पृ. ४०-४३

तोबदन

केलांग देवता — दो संस्कृतियों का संयोजन, **सोमसी** XI, १, जन. १९८५, गद्दी मैत्री पृ. ५२-४

द्विवेदी, भक्त राम

ब्रह्मौरी जनजीवन की एक झलक — जान्धर जाणा जीणा, **सोमसी** VIII, ३, जुलाई १९८२, पृ. ५१-७०

स्मृतिकण, **सोमसी** XI, १, जन. १९८५, संस्कृत — चम्बयाली समता पृ. ८०-९२

नन्द कुमार

गद्दी जनजीवन, आधुनिकता के परिवेश में, **कांगड़ा लोक साहित्य परिषद्** (नेरटी) IX, १९८३, अन्तिम २ पृ.

नन्देश कुमार

चमियाली भाषाओं के रूप — उनके सर्वनाम और अव्यय शब्द, राज्यभाषा संस्थान (शिमला) **शोधपत्रावली**, पृ. १८-३३

निर्झर, रत्न चन्द

हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों में हमारे रिश्ते-नाते, **सोमसी**

XII, ३-४, जुलाई-अक्तू. १९८६, पृ. ८८-९७

पराशर, स्वर्णलता

हिमाचल वीर अंक, **हिमधारा** (नारायण चन्द पराशर, सम्पा. नई दिल्ली) जन.-अगस्त, १९७४, २२१ पृ.

पराशर, हरि चन्द

पश्चिमी पहाड़ी का परम्परागत क्षेत्र (ब्रह्मपुर), **सोमसी** I, ३ जुलाई १९७५, पृ. ८६-७

भाषा — वसुओं की धातु (चम्बयाली-गादी-कांगड़ी सम्मिश्रण), **सोमसी** II, ४, अक्तू. १९७६, पृ. ४८-९

सांस्कृतिक हिमाचल — एक सरल शाब्दिक छवि, **हिमभारती** XI, ३, सित. १९७९, पृ. १४-२२

पाठक, राम लाल

हिमाचली संस्कृति में मोर, **सोमसी** XV, ३, जुलाई १९८९, गादी गीत में मोर, पृ. २५

पाण्डेय, लालता प्रसाद

प्राचीन हिमाचल में शिक्षा, लिपि भाषा और साहित्य का विकास **सोमसी** VII, ३, जुलाई १९८१. पृ. १७-२५

हिमाचल प्रदेश में शाक्त धर्म का विकास, **सोमसी** VI, ३, जुलाई १९८०, भरमौर पृ. ३४

पूंगा, तेज राज (तिलक, विकल)

उपनाण (लोकोक्ति) — एक विवेचन, **हिमभारती** XIV, ३, सित. १९८२, पृ. ११-१६

चम्बा के संस्कार गीत, **सोमसी** VIII, २, अप्रैल १९८२, पृ. ६४-७९, **पहाड़ी लोक साहित्य** (शिमला), १९८२, पृ. १८९-९१

नाग युगावशेष — मंढोर नाग, **सोमसी** X, २, अप्रैल १९८४ पृ. ३९-४५

मेरी से छैण यात्रा (मणिमहेश) **हिमभारती** XVIII, ३-४, सित.-दिस. १९८६, पृ. ४१-५

फुल्ल, सुशील कुमार

गादी बोली सामान्य, परिचय, **हिमभारती**, VIII, २-३,

जून-सित. १९७५, पृ. १४-२३
हिमाचल की लोक कथाओं का साहित्यिक, अनुशीलन, **हिमभारती** XIV, जून. १९८२, पृ. १-८

भारद्वाज, मैथिली प्रसाद
चम्बयाली लोक साहित्य, गल्लां होई बीतियां, आदि लेख **हिमप्रस्थ**, विविध अंक
चम्बयाली लोक साहित्य में राम कथा, **राजस्थान भारती** (बीकानेर) मिजर, **हिमोत्कर्ष**, अप्रैल-मई १९८४, चम्बा विशेषांक, जुलाई, १९८५

ममगाई, केशवानन्द
भरमौर के आदिवासी — निराली जिन्दगी, **हिमभारती** XIV, २, जून १९८२, पृ. १५-७

महाजन, ईनाक्षी
चम्बा पांगी लोकगीतों का संगीत पक्ष, **हिमभारती** XVII, २, मार्च १९८५, पृ. ७६-८३

माण्डला, देशराज
पहाड़ा रे दर्शन **हिमभारती** XXI, ३, सित. १९८९, पृ. २१-३

मोहन लाल
गद्दियार क्षेत्र का इतिहास, **सोमसी** IV, २, अप्रैल १९७८, पृ. ४४-५८
गद्दियों की धार्मिक प्रवृतियां और उनके देवालय, **सोमसी** V, १, जन. १९७९, पृ. ३-१५
गद्दियों के कुल और निषेध, **सोमसी**, VI, ३, जुलाई १९८० पृ. १२-२०

रणपतिया, अमर सिंह
कला पारखी एवं विजेता मेरू वर्मा, **सोमसी** V, २, अप्रैल १९७९, पृ. २६-३३
छतराढ़ी के भित्तिचित्र, **सोमसी** X, ३ जुलाई, १९८४, पृ. २७-३४ गदयार क्षेत्र का त्यौहार — बसो, सोमसी III, २, अप्रैल, १९७७ पृ. ५३-९

गदयार क्षेत्र भरमौर की समाज सेवी संस्थाओं की आर्थिक ढांचे में भूमिका, **सोमसी** XI, २, अप्रैल १९८५, पृ. ७३-६

गदयार क्षेत्र में कार्तिकेय पूजन, **सोमसी** VIII, २, अप्रैल १९८२ पृ. ५६-९

गदयार गीतों में विरह गान, **सोमसी** IV, ४, दिस. १९७८, पृ. ७-११

गदेरन (गदयोरे क्षेत्र) का जात्रा उत्सव, **सोमसी** VI, जन. १९८०, पृ. १८-२९

गद्दी नृत्य एवं लोकनाटय, **सोमसी** XIII, ४, अक्तूबर १९८७, पृ. ६२-७ गादी-पहाड़ी—एक परिचय, **सोमसी** II, ३, जुलाई १९७६, पृ. ६३-७

गादी-पहाड़ी भाषा में अनेकार्थक शब्दोंका विवेचनात्मक अध्ययन, **सोमसी** IV, ३, जुलाई १९७८ पृ. ८३-९४

गादी लोकगीत, **हिमाचल प्रदेश के घटना और श्रम प्रधान गीत** (शिमला) चम्बा के भरमौर क्षेत्र में सहयोगी प्रथाओं का प्रचलन, **सोमसी** XII, १, जनवरी १९८६, पृ. ६१-४

पहाड़ी भाषा तथा साहित्य को चम्बा का योगदान, हि. क. सं. भा. अकादमी **शोधपत्र**, ११ जुलाई, १९९०।

पुरातन पहाड़ी रियासतों के आपसी सम्बन्ध और सीमा विवाद चम्बा और बसोहली, **सोमसी** IX, २ अप्रैल, १९८३, पृ. ३२-४३

बन्नी भगवती (धार्मिक पर्यटन), **हिमभारती** XV, १ मार्च १९८३ पृ. २८-९

भरमौर का बांढा, **सोमसी**, XI, जन. १९८५, पृ. ३८-४०

भरमौर क्षेत्र के देवी-देवता, सोमसी XII, २ अप्रैल १९८६, पृ. ८२-९६

भूंकू और सुन्नी, **हिमप्रस्थ** फर. १९५७, पृ. ४४-५

हरणात्र, झांकी और बांढा, **सोमसी** XIV, ४ अक्तू. १९८३, पृ. ९८-१०३

राठौर, त्रिभुवन रेखा

हिमाचल प्रदेश के मन्दिरों की शैली तथा सूची, **सोमसी**,

I, ४ अक्तू. १९७५, पृ. ७८-१०१

राठौर, भुवनेश्वरी

हिमाचल प्रदेश की वास्तुकला की वाङ्मय सूची, **सोमसी**, I, २, अप्रैल १९७५, पृ. ८५-९६

रोज, एच. ए.

सांग आफ् सीण्डू बीर—अ सांग आफ् गद्दी वीमन, द शेपर्डज् आफ् द आउटर हिमालयाज्, पंजाब, **इण्डियन एण्टिक्वरी**—अ जरनल आफ् ओरियण्टल रिसर्च, बम्बई, भा० ३८, नव. १९०९, पृ. २९५-६

वर्मा, चुनीलाल

भरमौरी लोककथा, **हिमभारती**, VI, १ मार्च १९७४,

ललित, चेतराम भारद्वाज

चम्बा जिला का लोकप्रिय धार्मिक उत्सव नवाला, **हिमभारती** VI, १ मार्च १९८४,

वैद्य, किशोरीलाल

हिमाचल में नागपूजा, **हिमभारती** VIII, २, जून १९७६, पृ. ९-१२

व्यथित, गौतम शर्मा

हिमाचली लोकगीतों में सामाजिक चेतना, **सोमसी** XI, २ अप्रैल १९८५, नौखू गद्दण कने कूंजू चेंचलो, पृ. ६२

शर्मा, कमलप्रसाद

डंडारस—एक विश्लेषणात्मक अध्ययन—चम्बा लोकनृत्य, **सोमसी** XII, ३-४ जुलाई-अक्तूबर १९८६, पृ० ४४-५१

शर्मा, तेजराम

हिमाचल के प्राचीन कबीले, **सोमसी** VIII, ४, अक्तबर १९८२, पृ. १-८

शर्मा, दिवाकरदत्त आचार्य

हिमाचली वास्तुकला—परम्परा और शैली, **सोमसी** प्रवेशांक जन. १९७५, पृ. ७-२३

शर्मा, परमानन्द

कांगड़ा का गद्दी लोकजीवन, **जन-साहित्य**—पार्वती लोक मानस विशेषांक, V, ५-७, मई-जुलाई १९६६, पृ. २६-८

शर्मा, प्रेम कुमार

ऐतिहासिक लोककथा—सतवन्ती- **सोमसी** VIII, १, जन. १९८२, पृ ५५-८

छतराढ़ी में शिवशक्ति का प्रदुर्भाव, **सोमसी** XVI, १-२, जन. अप्रैल, १९९०, पृ. ६७-९

चम्बा की बसोआ परम्परा, **सोमसी** XIII, ३, जुलाई १९८७, पृ. ८८-९२

चम्बा के कुछ लोकगीत, **सोमसी** XII, ३-४, जुलाई-अक्तू. १९८६. पृ. ९८-१०६

नयना (चम्बयाली एकांकी), **हिमभारती** XIV, ४, दिस. १९८२, पृ. ४३-७

बन्नी-एक मौन पृ., **सोमसी** VII, २ अप्रैल १९८१, पृ. १७-२०

लोकनृत्य—बिलचौली, सोमसी VIII, ३, जुलाई १९८२, पृ. ३१-४

लोककर्मी गाथा हरणात्र, **सोमसी** XIV १ जन. १९८८, पृ. १-१८

शर्मा, बंशीराम

पहाड़ी भाषा और साहित्य का इतिहास तथा उपलब्धियां **सोमसी** XVI, ३-४, जुलाई-अक्तू. १९९०, पृ. १-१६

हिमाचल प्रदेश के प्रमुख शिवालय' **हिमभारती**, XIII, २ ३ जून-सित. १९८१, पृ १७-२०

शर्मा, ब्रह्मदत्त

हिमाचली जनमानस में नारसिंह, **सोमसी** XVI, ३-४ जुलाई अक्तू, १९९० पृ. ४६-९

हिमाचल में पूजित गूग्गा जाहर पीर, सोमसी XIII, १ जन. १९८७, पृ. ४३-५०

शर्मा, मनोहर लाल

काव्य कानन में धौलाधार, **सोमसी** VIII, ४, अक्तू. १९८२ पृ. ९ १५

शर्मा, रतनचन्द्र

ख्वाजा-पीर-हिमाचल जनमानस में सोमसी XIV, १, जनवरी १९८८, पृ८. ४८-५३

गद्दी जाति एवं धार्मिक संस्कार हिमभारती XVIII, ४ दिसम्बर १९८५, पृ. १६-२२

शर्मा बसन्त

लोकोक्तियों में गद्दी जनजीवन, **सोमसी** III, ३, जुलाई १९७७ पृ. ७४-६

शर्मा, विनयकुमार

मिंजरा रा मेला, **हिमभारती** XIX, ३, सितम्बर १९८७ पृ. १०-१४

शर्मा, शमी

गाद्दी भाषा, **सप्तसिन्धु** (पटियाला) उपभाषा विशेषांक, XIII, XIV ११, १२, १, नव. १९६५- जन. १९६६, पृ. ३८७-९३

हिमाचल की लोक संस्कृति एवं जनजीवन. सोमसी XVI १-२, जन.-अप्रैल, १९९०, पृ. ३५-३६

हिमाचल प्रदेसे रे गुज्जर, हिमभारती IX, १ मार्च १९७७ पृ. ६७-९

शर्मा, सुरेन्द्र

रांझू फुलमू हिमभारती XXI, ३, सितम्बर १९८८, पृ. ५५-८

शर्मा, सुरेश

चम्बा शहर—महाराजा शायल वर्मा की देन, **हिमभारती** XIX, १, मार्च १९८७, पृ ७३-५

शशिकान्त

हिमाचल प्रदेश का प्रसिद्ध लोकगीत—फुलमू और रांझू **सोमसी**

VIII, २ अप्रैल १९८२, पृ ३७-४०

श्यामकुमारी

चमास्से दे बर्त चर्त, **हिमभारती** X, ४, दिस. १९७८, पृ. १२-४

सैरी **हिमभारती**, XIII, २-३, जून-सित. १९८१, पृ ३३-५

हिमाचली भाषा में विवाह सम्बन्धी शब्दावली, हिमभारती VII, २-३ जून-सित. १९७५, पृ. ३८-४५

हिमाचली में दूध छाश और हाण्डो पारू, सोमसी IV, ३ जुलाई १९७८, पृ. ६-१

सागर, खेमराज

देवधरा चम्बा, **सोमसी** VI, २, अप्रैल १९८०, पृ. ४०-३

हिमाचल प्रदेश और नागपूजन, **सोमसी** VIII, ४ अक्तू. १९८२ पृ, ४४-६

हिमाचल प्रदेश का शिल्प, **सोमसी** XII, ३-४ जुलाई-अक्तू. १९८६, पृ. १११-३

सुमन, हरिप्रसाद

गद्दी जनजाति के तीज त्यौहार, **सोमसी** III, ३, जुलाई १९७६, पृ ४९-५२

चम्बयाली की विशिष्ट शब्दावली में भाषा तत्व, हिमभारती VII, २, ३ जून. सित. १९७५, पृ. ५८-६२

चम्बयाली लोकसाहित्य, **हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास** (काशी) XVI २०१७ वि. संवत् खं. २०, पृ. ७१३-२६

चम्बयाली लोकसाहित्य—एक अध्ययन., **पहाड़ी भाषा और लोकसाहित्य** (शिमला) १९७६, पृ. १९१-२०१

चम्बा के साहो क्षेत्र की कृषि सम्बन्धी शब्दावली, सोमसी I-४ अक्तू १९७५, पृ. ३२-६

चम्बा क्षेत्र की लोकोक्तियां तथा मुहावरे, सोमसी, III, ४ अक्तू. १९७७, पृ १३-६

चम्बा लोकमंच का रूप तथा संगठन, सोमसी, XVI, ३ जुलाई

१९८८, पृ. ५६-६४।

सेठी, सुरेन्द्रमोहन

चम्बा का लक्ष्मीनारायण मन्दिर—एक शास्त्रीय विवेचन, सोमसी X. ३, जुलाई १९८४, पृ १६-८ भरमौर शिलालेख उद्धरण पृ. १६

शिखर शैली के मन्दिर—चम्बा के विशेष सन्दर्भ में सोमसी IX, ३ जुलाई १९७३, पृ० २२-४

●

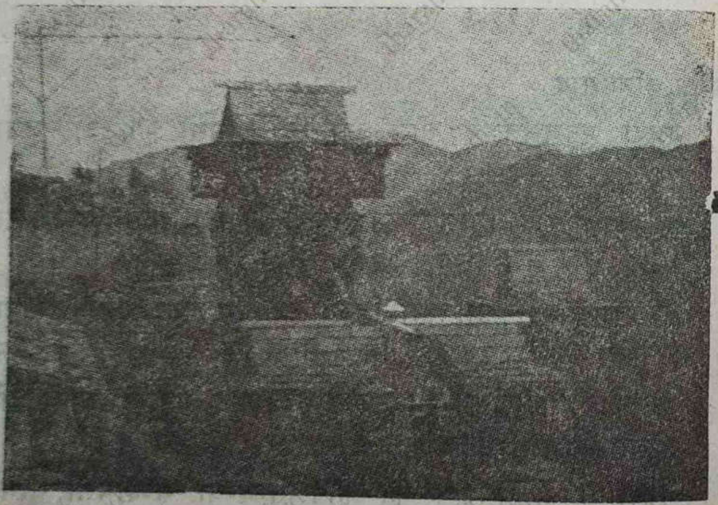

श्री जयईश्वरी देवी काली माता टियाली (दलैंया) तँ. ठियोग जिला शिमला

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | विवरण | मूल्य |
|---|---|---|---|
| | | के कलामों का मजमुआ | 15.00 |
| 2. | वजूद-ओ-अदम | लालचन्द प्रार्थी की गजलों व नज़मों का संग्रह | 25.00 |
| 3. | दर्द कोहसारों का | उर्दू कहानी संग्रह | 30.00 |
| 4. | नवीद-ए-सहर | स्व० सुदर्शन कौशल नरपुरी की गजलों व नजमों का संकलन | 40.00 |

**ENGLISH :-**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | Descriptive bibliography of Himachal | | 100.00 |
| 2. | Distant Echoes | Anthology of stories of Himachal writers | 40.00 |
| 3. | A Dictionary of Pahari dialects & A Dictionary & Grammer of Kinawari ( Reprint ) | | 50.00 |
| 4. | A Descriptive Grammer and bocabulary of Chinali Dr. D. D. Sharma | | 40.00 |
| 5. | The Kangri central subsystems ( A structural-description ) Dr. A. R. Chauhan | | 60.00 |

●

मुख्य पृष्ठ : राजा संसार चन्द कांगड़ा शैली

चित्रांकन : ओ० पी० टॉक

अन्तिम पृष्ठ : अग्नि में घिरे ग्वाल-वाल कांगड़ा शैली

चित्रांकन : रेखा देवी

HAACL पंजीकरण संख्या आर.एन. 28271/75

सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला द्वारा प्रकाशित व
मै. भारतेन्दु प्रिंटिंग प्रेस, 109/5 लोअर बाजार, शिमला, दूरभाष : 3452 द्वारा मुद्रित।